मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 23 वर्ष 3 • अंक 5 • जुलाई 2013 पाँच रुपये • सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

भारतीय मज़दूर वर्ग की पहली राजनीतिक हड़ताल 5

कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है 11

समाजवाद और धर्म – लेनिन 12

उत्तराखण्डः दैवी आपदा या प्रकृति का कोप नहीं यह पूँजीवाद की लायी हुई तबाही है!

हफ़्तों तक सुर्ख़ियों में रहने के बाद उत्तराखण्ड की भीषण तबाही की ख़बर अब अख़बारों के भीतरी पन्नों पर चली गई है। जैसा कि होता आया है, धीरे-धीरे यह त्रासदी भी भुला दी जायेगी। इसका ज़िक्र तभी होगा जब ऐसी ही या इससे भी भीषण कोई त्रासदी फिर से घटेगी और तब एक बार फिर मीडिया में तरह-तरह के विशेषज्ञ अपनी भाँति-भाँति की व्याख्यायें प्रस्तुत करेंगे। कोई इसे दैवीय आपदा बतायेगा तो कोई इसे प्रकृति का क़हर और कोई समूची मानव जाति और आधुनिक विज्ञान को पानी पी-पी कर कोसेगा। फिर जैसे ही मीडिया को अगली 'ब्रेकिंग न्यूज़' मिल जायेगी तो पर्यावरण का मुद्दा एक बार फिर से अभिलेखागार में चला जायेगा। ख़ैर मुनाफ़े के एकमात्र लक्ष्य पर टिकी पूँजीवादी मीडिया से इससे ज़्यादा उम्मीद की भी नहीं जानी चाहिए। लेकिन मज़दूर वर्ग, जिसे एक बेहतर समाज बनाने का ऐतिहासिक मिशन पूरा करना है, ऐसी त्रासदियों को इतने हल्के में नहीं ले सकता! ऐसा महज़ इसलिए नहीं कि इनमें जानमाल की भयंकर तबाही होती है, बल्कि इसलिए भी कि ऐसी त्रासदियाँ मानवता ही नहीं बल्कि पृथ्वी और उस पर रहने वाले तमाम जीव जन्तुओं और वनस्पतियों या यूँ कहें कि उसके समूचे पारिस्थितिकी तन्त्र के अस्तित्व के लिए ख़तरे की घण्टी हैं। कभी न तृप्त होने वाली मुनाफ़े की अपनी हवस की ख़ातिर पूँजीवादी व्यवस्था दिन-ब-दिन, घण्टे-दर-घण्टे आम मेहनतकश जनता का ख़ून तो चूसती ही है, पिछले कुछ वर्षों से आश्चर्यजनक रूप से नियमित अन्तराल पर दुनिया के किसी न किसी कोने पर ऐसी विभीषिकायें घटित हो रही हैं जो इस बात के स्पष्ट संकेत देती हैं कि यदि पूँजीवादी व्यवस्था का समय रहते नाश नहीं

सम्पादकीय अग्रलेख

किया गया तो यह समूचे भूमण्डल को नाश कर देगी ।

इस त्रासदी में मरने वाले और ग़ायब होने वाले लोगों की एक बड़ी संख्या तीर्थयात्रियों की थी जो चार धाम (केदारनाथ, बदरीनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री) यात्रा के लिए आये थे। देवभूमि के नाम से जाने जानी वाली उत्तराखण्ड की सरज़मीं पर होने वाली इस भयंकर तबाही के दिल दहला देने वाले दृश्य देखकर धर्म भीरू लोगों ने और साम्प्रदायिक राजनीति का घटिया खेल खेलने वाले मदारियों ने तुरत फुरत में इसे एक दैवीय आपदा क़रार दिया। ऐसे लोगों से तो बस वही सवाल पूछना काफ़ी होगा जो बरसों पहले शहीद-ए-आज़म भगतसिंह ने अपने सुप्रसिद्ध लेख ''मैं नास्तिक क्यों हूँ?'' में पूछा था - ''ईश्वर कहाँ है? वह क्या कर रहा है? क्या वह मानवजाति के इन सब दुखों और तकलीफ़ों का मज़ा ले रहा है? तब तो वह नीरो है, चंगेज़ ख़ाँ है, उसका नाश हो!''

तमाम पर्यावरणविद् इस तबाही के कारणों की टुकड़ों-टुकड़ों में तो सही पड़ताल करते हैं परन्तु उनकी सीमा यह है कि कुल मिलाकर वे इस तबाही का कारण मानव सभ्यता के विकास की एक ख़ास मंज़िल में क़ायम हुई उत्पादन प्रणाली यानी पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली को न मानकर समूची मानवता को ही कोसने लगते हैं और उनमें से कुछ तो आधुनिक विज्ञान को ही ऐसी त्रासदियों के लिए ज़िम्मेदार ठहराने लगते हैं। यह सही है कि उत्तराखण्ड की त्रासदी की भयावहता किसी प्राकृतिक प्रकोप का नहीं बल्कि प्रकृति के नैसर्गिक गति में अवांछित मानवीय हस्तक्षेपों का नतीजा है। परन्तु इसके लिए समूची मानव जाति को ज़िम्मेदार ठहराना सही नहीं है क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में प्रकृति के साथ छेड़छाड़ व्यापक मानवता के हितों के मद्देनज़र न होकर समाज के मुट्ठी भर लोगों के मुनाफ़े के लिए होता है। यह व्यवस्था व्यापक मानवता द्वारा आम सहमति से चुनी नहीं गई है बल्कि बलपूर्वक उस पर थोपी गयी है। इसलिए ऐसी त्रासदियों के लिए यदि कोई ज़िम्मेदार है तो इस व्यवस्था के रहनुमा यानी पूँजीपति शासक वर्गों की जमात है जिसके इशारों पर पूँजीवादी विकास का रथ मानवता के साथ ही साथ प्रकृति को भी छलनी करता हुआ सरपट दौड़ लगा रहा है।

दरअसल गढ़वाल हिमालय, जहाँ सबसे अधिक तबाही मची, अभी भी अपने भूगर्भीय विकास की प्रक्रिया में है और इस वजह से यह समूचा इलाक़ा पारिस्थितिक रूप से काफ़ी नाज़ुक और अस्थिर माना जाता है। ऐसे नाज़ुक और अस्थिर क्षेत्र में किसी भी क़िस्म का विकास पूर्ण नियोजित और विनियमित होना चाहिए और विकास की परियोजनाओं का पर्यावरण पर पड़ने वाले असर की सांगोपांग जाँच पड़ताल के बाद ही उनको हरी झण्डी मिलनी चाहिए। वर्ष 2000 में बने उत्तराखण्ड राज्य में ठीक इसका उल्टा हुआ! वैसे तो इस क्षेत्र में पहले से ही पूँजीवादी विकास की शुरुआत हो चुकी थी परन्तु नया राज्य बनने के बाद बिल्डरों, होटल व्यवसायियों और तमाम धंधेबाजों के हितों को ध्यान में रखते हुए जिस क़िस्म का विकास वहाँ पर हुआ उससे वहाँ का पारिस्थितिक तन्त्र और ज़्यादा अस्थिर हो गया।

पूँजीवादी विकास के मॉडल के तहत पर्यावरण की परवाह न करते हुए जिस तरह

(पेज 9 पर जारी)

मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन

एक सम्भावना-सम्पन्न आन्दोलन का बिखराव की ओर जाना...

– शिशिर

मारुति सुज़ुकी के मज़दूर पिछले करीब एक वर्ष से संघर्षरत रहे हैं। 18 जुलाई 2012 को मारुति सुज़ुकी के मानेसर संयंत्र में हुई हिंसा की दुर्भाग्यपूर्ण घटना में मारुति सुज़ुकी कम्पनी के एक मैनेजर अवनीश कुमार देव की मौत हो गयी थी और बड़ी संख्या में मज़दूरों सहित लगभग 100 लोग घायल हुए थे। इस पूरी घटना की किसी जाँच के बिना हरियाणा सरकार और मारुति सुज़ुकी कम्पनी ने मज़दूरों को अपना शिकार बनाया। इस घटना के बाद 540 स्थानीय मज़दूरों को बर्ख़ास्त कर दिया गया और 1800 से अधिक कॉण्ट्रैक्ट मज़दूरों को भी काम से निकाल दिया गया। करीब 147 मज़दूर ग़ैर-ज़मानती धाराओं में आज भी जेल में हैं। इसके बाद जब मज़दूरों ने अपने आन्दोलन की शुरुआत की तो अलग-अलग समय पर हरियाणा सरकार ने मज़दूर राजनीतिक कार्यकर्ताओं और आम मज़दूरों को गिरफ्तार करना जारी रखा। 7-8 नवम्बर को मारुति मज़दूरों ने हरियाणा सरकार द्वारा किये जा रहे दमन और मारुति सुज़ुकी द्वारा मज़दूरों की बर्ख़ास्तगी ख़िलाफ़ अपने

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

मज़दूरों को अपनी समझ और चेतना बढ़ानी पड़ेगी, वरना ऐसे ही ही धोखा खाते रहेंगे

मैं लुधियाना में क़रीब 6 सालों से रह रहा हूँ। पिछले अक्टूबर 2010 से मैं टेक्सटाइल्स मज़दूर यूनियन के साथ जुड़ा और मज़दूर बिगुल पढ़ रहा हूँ। पुराने मज़दूरों की जानकारी के अनुसार 1992 से पहले यहाँ पर (सीटू) की यूनियन थी – 1992 में लुधियाना में हड़ताल हुई थी जो क़रीब 45 दिनों तक चली थी। उस 45 दिनों की हड़ताल में मज़दूरों के ऊपर दमन का चक्र भी चला था। उस लम्बी हड़ताल के बाद यूनियन समझौतापरस्त हो गयी और मज़दूरों की जानकारी के अनुसार पैसा लेकर बैठ गयी।

मुझे पता चला कि लुधियाना के मज़दूरों के सन् 2000 में मज़दूर अख़बार बिगुल की शुरुआत हुई थी और एक लम्बे समय के बाद 2008 में कारख़ाना मज़दूर यूनियन की स्थापना हुई थी। 2008 में न्यू शक्तिनगर में एक दर्दनाक घटना घटी। एक टेक्सटाइल फैक्ट्री में पप्पू तानामास्टर की मशीन में आ जाने से मौत हो गयी थी। जैसे ही कारख़ाना मज़दूर यूनियन के साथियों को पता चला तो उन्होंने पूरे शक्तिनगर के मज़दूरों को इकट्ठा किया और पप्पू तानामास्टर के परिवार वालों को मुआवज़ा दिलवाया। इससे मज़दूरों में एकता की ताक़त का एहसास हुआ लेकिन मज़दूरों के साथ हो चुकी गद्दारी से मज़दूर काफ़ी सोच में पड़े हुए थे, लेकिन यूनियन का समझौता कराने का तरीक़ा उनको अच्छा लगा कि 1992 की तरह किसी एक नेता ने समझौता नहीं किया बल्कि सभी मज़दूरों की सहमति से फैसला लिया गया। फिर न्यू शक्तिनगर के मज़दूरों ने बढ़ती महँगाई के अनुसार वेतन में बढ़ोत्तरी की माँग की तो मालिकों ने मज़दूरों को फैक्टरियों से बाहर निकाल दिया। मज़दूरों के पास संघर्ष के सिवा और कोई रास्ता नहीं था। मज़दूरों ने कारख़ाना मज़दूर यूनियन को बुलाया और यूनियन ने मज़दूरों की मीटिंग की और लेबर दफ़्तर पर लगातार 9 दिन धरना-प्रदर्शन किया तब जाकर 11 प्रतिशत वेतन के ऊपर बढ़ोत्तरी हुई। ये समझौता लेबर दफ्तर में मालिकों और मज़दूरों के संगठन के बीच हुआ।था। मज़दूरों का यूनियन के ऊपर विश्वास दृढ़ता के साथ बना फिर बाद में कश्मीननगर, गौशाला, माधोपुरी, न्यू माधोपुरी, सैनिक कॉलोनी, हीरा नगर के मज़दूरों ने यूनियन के साथ मिलकर संघर्ष किया और इन सारी जगह वही समझौता हुआ। इसी बीच लुधियाना के गीतानगर इलाके में मज़दूर यूनियन का पर्चा पढ़कर करके हड़ताल पर चले गये थे। यहाँ पर सीटू से अलग हुई, सीटीयू पंजाब के नेतृत्व में मज़दूरों ने संघर्ष किया। इस संघर्ष के ऊपर मालिकों ने दमन का रास्ता अपनाया बल्कि इस दमन में मज़दूरों के हाथ-पाँव टूटे। ये सब होने के बावजूद जो शक्तिनगर में और बाकी इलाक़ों में जो फैसला हुआ वही इन मज़दूरों को मिला।

यहाँ 2010 में कारखाना मज़दूर यूनियन अपने फोकल प्वाइंट इलाक़े में काम कर रही है। यहाँ पर तभी टेक्सटाइल्स मज़दूर यूनियन बना दी गयी थी, अब 2011 में टेक्सटाइल्स मज़दूर यूनियन ने मज़दूर पंचायत बुलायी जिसमें मज़दूरों के बीच कुछ माँगों पर विचार-विमर्श हुआ। और सारे फैक्टरी मालिकों के पास माँगपत्र मज़दूरों के हाथों भिजवा दिया गया। एक माँगपत्र की कापी लेबर दफ्तर पर दी गयी थी। माँग पत्र की याद दिलाने के लिए मज़दूरों के प्रतिनिधियों ने धरना-प्रदर्शन किया। अन्त में 22 सितम्बर 2011 को हड़ताल हो गयी जो 70 दिनों तक चली। इसी हड़ताल में मालिकों ने नेताओं के ऊपर बिकने और आतंकवाद का आरोप लगाया। इसमें मालिकों ने अपनी एसोसिएशन में फैसला किया कि मज़दूरों को अब किसी भी हालत में तोड़ दिया जाये लेकिन मज़दूर तो टूटे नहीं बल्कि लुटेरों में ही एकता क़ायम नहीं रही और 70 दिनों के बाद मालिकों ने मज़दूरों के साथ समझौता किया। मज़दूरों ने भी ठान लिया था कि अब हम टूटकर मिल चलाने नहीं जायेंगे। इस साल मज़दूरों ने 14 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी, ईएसआई कार्ड और बोनस पर समझौता किया। दूसरे एरिया के मज़दूरों यानी गीतानगर के मज़दूरों का जो संगठन है वह पहले से ही दलाल क़िस्म के समझौता करता है और उसने 2011 में जनवरी और फरवरी मन्दी के बीच 12 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी करायी वह भी कुछ ही फैक्टरियों में। टेक्सटाइल्स मज़दूर यूनियन ने 2011 की तरह 2012 में मज़दूर पंचायत बुलायी उसमें माँगों पर चर्चा हुई और अगले हफ्ते माँगपत्र फैक्टरी मालिकों के पास भिजवा दिया गया। अब मज़दूरों ने हड़ताल न करके दूसरे रास्ते अपनाये जो पिछले 2011 में बिगुल ने सुझाये थे। ओवरटाइम बन्द करके एक तो फैक्टरी मालिकों के ऊपर दबाव दूसरी तरफ़ सरकारी विभागों के ऊपर दबाव बनाया। अब सरकारी अफसरों को भी कहने का मौका नहीं मिला कि मज़दूर फैक्टरी के अन्दर नहीं है। मज़दूर साढ़े आठ घण्टे काम करने के बाद मीटिंग किया करते थे। इस बार मज़दूरों ने संघर्ष करके 13 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी, ईएसआई कार्ड हासिल किया। अब फैक्टरियों में पीएफ वालों के छापे पड़ रहे हैं।

यूनियन यानी वर्गसंघर्ष की पाठशाला

इस यूनियन का नियम है हर सप्ताह मज़दूरों की मीटिंग करना। ये यूनियन बिल्कुल लेनिनवादी उसूलों पर चलती है, जैसे लेनिन ने कहा था कि ट्रेड यूनियन मज़दूरों के लिए वर्ग संघर्ष की पाठशाल होती है। मीटिंगों में मज़दूर इसमें अपना अनुभव साझा करते हैं। और रोज-रोज जो समस्या आती है उनको हल करने की चेतना विकसित करते हैं।

2012 में यहाँ के एक इलाक़ा मेहरबान में 4 जनवरी को हरसिद्धी टेक्सटाइल्स में चोरी के इल्ज़ाम में एक मज़दूर को जेल में बन्द करवा दिया गया था। यूनियन ने अपनी नीति के अनुसार उस गली की चारों फैक्टरियों के मज़दूरों के साथ मीटिंग की और मालिक के ऊपर दबाव बनाया। जिससे वहाँ के मज़दूरों ने यूनियन के ऊपर विश्वास किया और वहाँ भी साप्ताहिक मीटिंग जारी है। इधर भी फैक्टरी में ईएसआई कार्ड बन रहे हैं और पीएफ वालों के छापे पड़ रहे हैं। 2012 का संघर्ष टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन ने काफ़ी समझदारी और सूझ-बूझ के साथ लड़ा।

अब गीतानगर के संगठन वाले चुप बैठे हुए हैं। याद हो कि गीतानगर में दो संगठन है। एक तो वे हैं जो (सीटू राष्ट्रीय यूनियन) से अलग हुआ है। सीटीयू पंजाब दूसरा है। सीटीयू से अलग हुआ टीयूसीसी यहाँ पर मज़दूरों को पस्तहिम्मत करने का काम करता है, संगठन के नाम पर मज़दूर के दिलों से गाली निकलती है।

मेरा कहने का मतलब है कि मज़दूरों का कोई भी संगठन बिना जनवाद के नहीं चल सकता। लेकिन सीटू, एटक, इंटक, बीएमएस तथा उनसे जो संगठन अलग होकर मज़दूरों को गुमराह कर रहे हैं और कैसे भी करके अपनी दाल-रोटी चला रहे हैं। मज़दूरों को इन संगठनों से बचना होगा और अपनी समझ को बढ़ाना और अपनी चेतना विकसित करनी होगी। तभी कोई क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन पूरे देश के पैमाने पर खड़ा किया जा सकता है।

– विशाल, लुधियाना

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

मज़दूर बिगुल **'जनचेतना'** की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782**
- **जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)**
- **114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273009**
- **जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09971158783**
- **जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807**

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलन कर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित)

एक मज़दूर की कहानी जो बेहतर ज़िन्दगी के सपने देखता था!

मज़दूर बस्तियों से

प्रकाश को शहर आये 20 साल से भी ज़्यादा समय हो गया था। कई साल पहले पत्नी की बीमारी का ठीक इलाज न हो पाने के कारण वह चल बसी थी। प्रकाश के तीन बच्चे थे। उत्तर प्रदेश से वह बड़े अरमान के साथ लुधियाना आया था कि कुछ पैसा कमायेगा, लड़की की शादी करेगा, दोनों लड़कों को बढ़िया घर बनाकर देगा। कुछ ज़मीन घर की है और कुछ ख़रीदकर बुढ़ापे में घर जाकर खेती करेगा। शरीर भी उसका हट्टा-कट्टा था और मेहनत भी ख़ूब करता था। लुधियाना आकर होज़री में काम करने लगा।

जिस बेड़े में प्रकाश रहता था, उसमें दस कमरे थे। इनके बीच सिर्फ़ एक शौचालय और एक नलका था। सुबह शौचालय जाने, नहाने, बर्तन धोने और पीने का पानी भरने के लिए लम्बी लाइन लगानी पड़ती थी। अगर सुबह उठने में देर हो गयी तो उस दिन काम पर भी देरी से पहुँचता था या फिर नहाने, बर्तन धोने या रोटी बनाने जैसा कोई ज़रूरी काम छोड़ना पड़ता था। इसलिए प्रकाश रोज़ सवेरे पाँच बजे उठता और भीड़ बढ़ने से पहले सात बजे तक अपने सारे काम निबटा लेता था। कुछ देर कमरे में बैठता, एक रुपये वाली सिगरेट का कश खींचता और फिर साढ़े सात बजे फ़ैक्टरी के लिए चल पड़ता। आठ बजे से पहले फ़ैक्टरी पहुँचने वाला प्रकाश पहला कारीगर था, जो देर रात फ़ैक्टरी चलाने के लिए मालिक से कहता था। पर मालिक कहता, "जब सारे मज़दूर काम ख़त्म कर देते हैं, उसके बाद एक आदमी के लिए लाइट नहीं जलायी जा सकती है।" तो इस तरह आठ बजे काम से छुट्टी हो जाती थी। सब्ज़ी ख़रीदने के लिए कुछ समय बाज़ार में लगता तो प्रकाश नौ बजे तक कमरे में पहुँचता, जहाँ उसका बड़ा बेटा काम से आकर उसका इन्तज़ार करता। कमरे में पहुँचकर दाल, चावल, रोटी और आलू का चोखा बनाने का काम शुरू होता, जो सुबह वाले बर्तन धोने से लेकर खाना बनाने तक ग्यारह बजे तक चलता। फिर पड़ोसी राजेश के कमरे में जाकर टीवी पर कुछ गीत या फ़िल्म देखता। इस तरह दिनभर की थकान और अकेलेपन को दूर करने का उपाय किया जाता। 12 बजे के पहले-पहले नींद आ दबोचती और सवेरे काम पर जाने के लिए 5 बजे जागने की चिन्ता की वजह से फ़िल्म के आनन्द को बीच में छोड़कर प्रकाश सो जाता।

एक दिन मैं प्रकाश के कमरे में गया तो देखा कि एक और मज़दूर के साथ बैठकर प्रकाश दारू पी रहा था और काफ़ी ख़ुश दिख रहा था। मुझे भी उसने कहा कि आओ साथी आज ख़ुशी का दिन है तुम भी पिओ। मैंने कहा, "साथी आपको तो पता है कि मैं शराब नहीं पीता, आप पीजिये और ये बताइये कि यह पार्टी किस ख़ुशी में हो रही है?" प्रकाश ने बताया कि शहर के बाहर उसने एक सरदार डीलर से 70 गज़ ज़मीन एक लाख रुपये में किस्त पर ले ली है। अब तक मकानमालिकों को बहुत किराया दे चुका, अगर सारा इकट्ठा करता तो अब तक मैं 100 गज का मकान बना लेता। अब समझ में आया है, मैंने सौदा कर लिया। अब लड़का भी कमाने लगा है, इस साल शादी भी कर दी है। बस अब लड़की की शादी करनी है। इसीलिए लड़के को भी शहर बुला लिया है। दोनों मिलकर कमायेंगे तो दो साल में यहाँ अपना घर बना लेंगे। जब बूढ़ा हो जाऊँगा, तो यहाँ का मकान बेचकर गाँव में ज़मीन ख़रीदकर खेती करूँगा। हम लोगों ने खाना खाया और आराम करने के लिए छत पर सोने चले गये। जून की धूप की वजह से छत अब तक गरम थी। थोड़ी हवा चल रही थी, जिससे कुछ राहत थी, लेटने पर नींद नहीं आ रही थी, क्योंकि छत पर चारपाई के बिना सोना तवे पर लेटने जैसा लग रहा था। बाक़ी मज़दूरों की तरह इस बेड़े के मज़दूरों के पास भी चारपाई नहीं थी। पर सभी ज़मीन पर चादर बिछाकर लेटे थे, जिसमें से कुछ तो थके-हारे सो चुके थे, कुछ मोबाइल पर गीत और फ़िल्म देखने में मसरूफ़ थे।। उस रात प्रकाश के साथ घर-बार की बातों के अलावा आने वाले समय की चिन्ताओं और उम्मीद भरी बातें हुईं। कुछ और मज़दूर भी हमारे पास बैठे थे, पर शराब के नशे में ज़्यादातर बातें प्रकाश ने ही कीं। ये मेरी प्रकाश के साथ दूसरी या तीसरी मुलाक़ात थी।

इसके बाद प्रकाश यूनियन की मीटिंगों में भी आने लगा। वो हमेशा एक ही बात कहता था कि साथी बातों से कुछ नहीं होगा, सरमायेदारों के ख़िलाफ़ तलवार उठाना ही पड़ेगा। मैं उसे भगत. सिंह की जेल से लिखी गयी चिट्ठी का हवाला देकर बताने की कोशिश करता कि जब तक मज़दूर-मेहनतकश की बड़ी आबादी अपनी बदहाली के कारणों को नहीं समझ लेती, लुटेरों को नहीं पहचान लेती और रोज़-रोज़ लड़े जाने वाले हक़ों-अधिकारों और तानाशाही के ख़िलाफ़ संघर्ष के रास्ते एकता की शक्ति में विश्वास नहीं प्राप्त कर लेती, तब-तब अगर कुछ लोग तलवार उठा भी लेंगे तो मज़दूरों की मुक्ति सम्भव नहीं। इस पर प्रकाश सहमति में सिर हिलाता और फिर कहता, साथी तलवार तो उठाना ही पड़ेगा।

प्रकाश को जिसने ज़मीन दिलायी थी, वो प्रकाश के साथ पहले एक ही फ़ैक्टरी में काम करता था, जहाँ इनकी जान-पहचान हो गयी थी। छुट्टी वाले दिन वह कभी-कभी प्रकाश के कमरे में आता और सुलफ़ा-शराब का दौर चलता। इस समय तक काम का सीज़न शुरू हो चुका था। प्रकाश ने पाँच महीने बाद लड़की की शादी तय कर दी थी, जिसमें लगभग एक लाख रुपये का ख़र्च था। अब प्रकाश और उसका लड़का सुदामा जी-जान से काम करने लग गये। सुबह सात बजे काम पर जाना और रात को 10 बजे काम से आना, आम बात हो चुकी थी। कभी-कभी प्रकाश का लड़का कहता, "साथी, शादी हुए पाँच महीने हो गये, मुश्किल से हम लोग एक महीना इकट्ठा रहे हैं। घर से फ़ोन आया था कि पत्नी गर्भवती है। मैं सोचता हूँ कि पत्नी को अपने पास शहर बुला लूँ। पिताजी से कई बार कहा है, पर वो मानते नहीं। कहते हैं कि ख़र्चा बढ़ जायेगा। सारी उम्र ख़ुद तो बैल की तरह काट लिया अब मुझे भी उसी तरह जोतना चाहते हैं।"

लड़की की शादी सुख-शान्ति से हो गयी, वह अपने ससुराल में ख़ुश थी। इस बात की प्रकाश को बहुत ख़ुशी थी। पर सुदामा पिता से नाराज़ रहता था। एक तरफ़ काम का बोझ और दूसरी तरफ़ पत्नी का फ़ोन आता रहता था। इस समय मेरी प्रकाश के साथ मुलाक़ात कम ही होती थी।

एक दिन प्रकाश का फ़ोन आया कि साथी मैं लुट गया, मेरे साथ धोखा हो गया। उसने बताया कि उसने एक लाख रुपये ज़मीन के लिए दिये थे, पर मालिक रजिस्ट्री नहीं करवा रहा था। जब सौदा करवाने वाले बिचौलिये को बुलाया गया तो वह कमरे में ताला लगाकर फ़रार था। बात थाने पहुँच गयी। ज़मीन मालिक ने बताया कि उसे सिर्फ़ तीस हज़ार रुपये मिले हैं। अगर 6 महीने में सत्तर हज़ार रुपये जमा ना किये तो फिर नयी क़ीमत के हिसाब से पैसे लगेंगे, तभी रजिस्ट्री हो सकेगी, क्योंकि अभी तक ज़मीन की क़ीमत बढ़ रही है। पर इस समय सीज़न मन्दा था। काम ने ज़ोर नहीं पकड़ा था। हर महीने 12 हज़ार रुपये कमाना आसान बात नहीं थी। इस समय उधार भी नहीं मिलता क्योंकि लगभग सारे ही हौज़री मज़दूरों का काम फ़रवरी-मार्च से जून-जुलाई तक मन्दा चलता है। सात रुपये सैकड़ा के हिसाब से कुछ रुपये ब्याज पर लेकर एक किस्त तो दे दी गयी, पर अगले महीने भी काम ने रफ़्तार नहीं पकड़ी। प्रकाश ने फ़ैक्टरी मालिक से काम देने के लिए कई बार कहा पर वह कहता कि साल का ऑर्डर नहीं आया। काम मन्दा होने के कारण इसी तरह की परेशानियों के साथ बाक़ी मज़दूर भी जूझ रहे थे। क्योंकि इस मफ़लर बनाने वाली फ़ैक्टरी में लगभग सारे ही मज़दूर पीस रेट पर काम करते हैं। जब तेज़ी का दौर होता था तो रात में भी काम करने के लिए मालिक मज़दूरों को रोक लेता था। अगर मन्दा होता था तो सारा दिन ताश खेलकर कल काम मिलने की उम्मीद लेकर मज़दूर ख़ाली हाथ कमरे में वापस लौट जाते थे। पैसे की चिन्ता प्रकाश को खाये जा रही थी, क्योंकि पहले के जमा किये हुए पैसे का भी डूबने का ख़तरा था। परेशानी के कारण प्रकाश ज़्यादा पीने लग गया था। चिलम पीने के बाद सारा दिन फ़ैक्टरी जाकर मशीनों के बीच लेटा रहता था। इस समय पैसे का जुगाड़ करने में लगा प्रकाश कम ही मिलता था।

लगभग चार महीने बाद उसके साथ काम करने वाला एक मज़दूर साथी मिला, जो गाँव से आया था। उसने बताया कि प्रकाश पागल हो गया है और उसे घर भेज दिया है। प्रकाश ने उस फ़ैक्टरी में लगभग 20 साल काम किया था, इसलिए हम लोगों ने मालिक से उसके इलाज के बारे में बात की तो मालिक ने ख़र्चा देने से मना कर दिया। हम लोगों ने चन्दा करके इलाज करवाने के बारे में सोचा। मालिक भी कुछ पैसे देने को राज़ी हो गया। प्रकाश के घर उसके बेटे से बात की तो उसने बताया कि पिछले एक हफ़्ते से प्रकाश बिस्तर पर ही टट्टी-पेशाब कर रहा है। उसने कहा कि उसके पास कोई पैसा नहीं है, अगर सारा ख़र्च मालिक या हम लोग उठाते हैं तभी वह आ सकता है। पहले ही घर के सारे गहने आदि बिक चुके हैं, बस थोड़ी ज़मीन बाक़ी है। हमारी तो ज़िन्दगी नर्क बन चुकी है।

प्रकाश की हालत सुनकर मालिक ने इलाज करवाने से बिल्कुल ही इन्कार कर दिया, क्योंकि उसे डर था कि कहीं यहाँ आकर अगर प्रकाश की मौत हो जाती है तो उसको मुआवज़ा भी देने के लिए मज़दूर कह सकते हैं। मालिक और प्रकाश के लड़के का रवैया देखकर बाक़ी साथी मज़दूरों की भी हिम्मत प्रकाश को यहाँ लाने की नहीं हुई।

अब तक शायद प्रकाश आने वाली बेहतर ज़िन्दगी के सपने साथ लेकर इस दुनिया से विदा हो चुका होगा। जिस ज़मीन के टुकड़े की ख़ातिर उसने अपने आप को रोगी बनाया, उसे भी वह हासिल नहीं कर सका और जिस औलाद के लिए घर बनाने और ज़मीन लेने के बारे में सोचता था, वह भी प्रकाश से नाराज़ रहे, क्योंकि ज़मीन ख़रीदने के चक्कर में बच्चे छोटी-छोटी चीज़ों के लिए तरसते थे। वे प्रकाश की चिन्ताओं को नहीं समझते थे।

यह कहानी अकेले प्रकाश की नहीं। ना जाने कितने मज़दूर अपने मन में बेहतर ज़िन्दगी का सपना लेकर शहर आते हैं। कारख़ाने में हाड़तोड़ मेहनत करने के अलावा कई तरह की नेटवर्किंग कम्पनियों, बीमा कम्पनियों, कमेटियों वग़ैरह में पैसा और समय लगाते हैं। छोटा ज़मीन का टुकड़ा या घर बनवाने के लिए सारी उम्र मेहनत करते रहते हैं। पर ज़्यादातर को जो हासिल होता है, वह प्रकाश से थोड़ा ज़्यादा या कम ही होता है।

– राजविन्दर

"अपना काम" की ग़लत सोच में पिसते मज़दूर

मैं दिल्ली, गाँधी नगर में सिलाई का काम करता हूँ। एशिया की सबसे बड़ी इस कपड़ा मार्किट का नाम जिन मज़दूरों के दम पर है; उनके हालात बहुत ही बदतर है। लेकिन फिर भी यहाँ काम करने वाले मज़दूर एक गलत मानसिकता के शिकार है। यहाँ अधिकतर सिलाई मज़दूर पीस रेट पर काम करते है। उन्हें लगता कि हम किसी से बँधे हुए नहीं है। ये हमारा अपना काम है; जब मन होगा तब काम पर आयेंगे और जब तक मन होगा छोड़कर जा सकते है। इन मज़दूरों को लगता है कि वे अन्य मज़दूरों के मुक़ाबले ज़्यादा आज़ाद है। इन मज़दूरों में अपने काम के मालिक होने की मानसिकता काम करती है। लेकिन असलियत यही है कि ये पीस रेट पर काम करने वाले सिलाई मज़दूर भी पूरी तरह मालिक के ही गुलाम होते है। सुबह काम पर देर से पहुँचे तो डाँट तो पड़ती ही है और अगर दो-तीन ऐसा ही हुआ तो काम से भी निकाले जा सकते है। काम ज़्यादा होने पर मालिक देर तक काम करने को कहता; जो करना ही पड़ता है। मालिक अक्सर बात-बात पर गालियाँ देकर डाँटता रहता है। मैं 15 साल से सिलाई लाईन में हूँ; मुझे तो यही महसूस हुआ कि पीस रेट पर काम करने वाला मज़दूर भी आज़ाद नहीं है। हाँ हम एक जगह से काम छोड़ सकते है; काम की तलाश में भटकेंगे तो हो सकता है कहीं न कहीं काम मिल ही जाय लेकिन हम मज़दूरों के ज़िन्दगी में कोई बदलाव नहीं आता है। क्योंकि किसी भी मालिक के पास जायेंगे तो वह काम तो ऐसे ही लेगा। पीस रेट पर मिलने वाला पैसा बेहद कम होता है और ये वे रेट है कई सालों से बढ़े ही नहीं है। ऐसे में इस महँगाई में अपना घर-परिवार चलाने के लिए हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद भी हर महीने किसी का उधार करना पड़ता है। आधा से ज्यादा वेतन तो खाने में खर्च होता है। बाकी में से कमरे का किराया देना पड़ता है और बच्चों पर खर्च हो जाता है। जो थोड़ा बहुत बचता है वह परिवार में हर बार किसी न किसी के बीमार होने के कारण डॉक्टर और दवाई पर खर्च हो जाता है।

दोस्तो! मुझे तो यही समझ आता है कि चाहे वेतन पर काम करने वाले मज़दूर हो या पीस रेट पर सब मालिकों के गुलाम ही हैं। इस गुलामी के बन्धन को तोड़ने के लिए हम मज़दूरों के पास एकजुट होकर लड़ने के सिवा कोई रास्ता भी नहीं है। मैं नियमित मज़दूर बिगुल अख़बार पढ़ता हूँ। मुझे लगता है कि मज़दूर वर्ग की सच्ची आज़ादी का रास्ता क्या होगा; यहीं इस अख़बार के माध्यम से बताया जाता है।

– राहुल, करावल नगर, दिल्ली

कारख़ाना इलाक़ों से

लुटेरे गिरोहों के शिकार औद्योगिक मज़दूर प्रशासन और फ़ैक्टरी मालिकों के ख़िलाफ़ संघर्ष की राह पर

लुधियाना में लूट-खसोट की वारदातों से तंग आकर बहादरके रोड वाले इलाक़े के हज़ारों फ़ैक्टरी मज़दूरों ने फ़ैक्टरियों में काम बन्द करके सुरक्षा बन्दोबस्त ना करने के ख़िलाफ़ पुलिस-प्रशासन और मालिकों के ख़िलाफ़ रोषपूर्ण प्रदर्शन किया। पिछले एक महीने में दर्जन से ज़्यादा लूट-खसोट की वारदातें इस इलाक़े में काम करने वाले मज़दूरों के साथ हो चुकी हैं। ये वारदातें आमतौर पर तनख़्वाह और एडवांस मिलने वाले दिनों में 10 से 15 तारीख़ और 25 से 30 तारीख़ के बीच होती हैं। पिछली 11 जून को रात के समय तीन मज़दूरों को लुटेरों ने ज़ख़्मी करके लूट लिया, जिसके बाबत पुलिस ने शिकायत लिखने की कोई कार्रवाई नहीं की, ऊपर से पीड़ित मज़दूरों से ही पैसे की माँग की गयी और झिड़ककर वापस भेज दिया गया। जब इन मज़दूरों ने अपने फ़ैक्टरी मालिकों से सुरक्षा का बन्दोबस्त करने को कहा तो उन्होंने भी अनसुना कर दिया। इसके बाद 12 जून को स्वत:स्फूर्त ढंग से मज़दूर सड़कों पर आने के लिए मजबूर हुए। मज़दूरों के रोष को देखकर प्रशासन ने पुलिस चौकी बनाने और उस इलाक़े में पुलिस के गश्ती दस्ते लगाने जैसी कुछ कार्रवाई की, पर लूट-मार की घटनाएँ बदस्तूर जारी हैं।

लुधियाना के बहादरके रोड के इलाक़े में माल निर्यात करने वाली बड़ी-बड़ी कम्पनियों में हज़ारों मज़दूर कपड़ा और पोशाकें तैयार करते हैं। पर इन फ़ैक्टरियों में ज़्यादातर काम ठेका मज़दूरों से ही कराया जाता है, जिन्हें फ़ैक्टरियों में काम करने का कोई सबूत जैसे पहचान पत्र, हाज़िरी कार्ड, नियुक्ति पत्र आदि, ईएसआई कार्ड, पीएफ़, वार्षिक बोनस और छुट्टियाँ, फ़ैक्टरी के अन्दर सुरक्षा प्रबन्ध, आने-जाने के लिए साधन जैसी कोई भी क़ानूनी सुविधाएँ हासिल नहीं हैं। ऊपर से तनख़्वाह और पीस रेट इतने कम हैं कि आठ घण्टे काम करके घर का ख़र्च चलाना मुश्किल होता है, इसी वजह से देर रात तक काम करना इन मज़दूरों की मजबूरी है। रात को काम से छुट्टी के बाद जब मज़दूर सड़कों पर आते हैं तो झपटमारों के हमले के शिकार होते हैं। ज़ख़्मी होने के बाद भी फ़ैक्टरी मालिक और प्रशासन की तरफ़ से कोई मदद ना मिलने के कारण पीड़ित मज़दूर और ज़्यादा भुखमरी की हालत में पहुँच जाते हैं। कई मज़दूरों के पास चोट का इलाज कराने का भी पैसा नहीं होता है। इसके अलावा फ़ैक्टरी का पहचानपत्र या हाज़िरी कार्ड न होने के कारण पुलिस वाले भी रात को इन मज़दूरों से पूछताछ के बहाने तंग करते हैं और चोर होने का इल्ज़ाम लगाकर उनके पास जो पैसे होते हैं, वह भी निकलवा लेते हैं।

वैसे तो पूरे शहर में ही लुटेरों की हिम्मत बहुत बढ़ गयी है। हर नागरिक पीड़ित है, पर शहर के बाहर सुनसान फ़ैक्टरी इलाक़ों में काम करने वाले मज़दूर इन लुटेरों के शिकार ज़्यादा होते हैं। ऊपर से दूसरे राज्यों से आने की वजह से स्थानीय प्रशासन में भी इन मज़दूरों की सुनवाई नहीं होती है। लगभग साढ़े तीन साल पहले ढंडारी इलाक़े में हुई घटना भी आज जैसे हालात की ही पैदावार थी जिसमें झपटमारी की घटनाओं में पुलिस की तरफ़ से अनदेखी और ढीली कार्रवाई की वजह से हज़ारों मज़दूर सड़कों पर आ गये थे। पुलिस द्वारा दमन की नीति अपनाने के कारण मज़दूरों का प्रदर्शन हिंसक रूप धारण कर गया था, जिसमें कुछ क्षेत्रीय राजनीति करने वाले तत्वों ने आग में घी डालने का काम किया और लोगों को भड़काया भी। इसके बाद पंजाब पुलिस ने क्षेत्रवाद का सहारा लेकर अपनी नालायकी को ढकने के लिए यूपी, बिहार के भइया बनाम पंजाबियों का झगड़ा बनाकर लोगों को आपस में लड़ाया और अपना दामन पाक-साफ़ दिखाने को कोशिश की थी। 41 निर्दोष मज़दूरों, जिनमें तीन बच्चे भी थे, पर संगीन धाराएँ लगाकर जेल में बन्द कर दिया था। उस पूरे इलाक़े को पुलिस छावनी में तब्दील करके मज़दूरों पर बेतहाशा ज़ुल्म किये गये। इसके जवाब में पंजाब के मज़दूर, किसान, मुलाज़िम संगठनों ने लगातार धरने-प्रदर्शन करके प्रशासन पर दबाव बनाकर जेलों में बन्द मज़दूरों को रिहा करवाया था। ढंडारी काण्ड के समय मज़दूर स्वत:स्फूर्त ढंग से बिना किसी योजना के सड़कों पर उतरे थे। इसलिए प्रशासन पर दबाव बनाने और संघर्ष को सही दिशा में ले जाने की कमी रही। जब पुलिस ने दमन किया उस समय मज़दूर संगठित होकर टक्कर लेने की हालत में नहीं थे। जिसकी वजह से उस पूरे इलाक़े में दहशत का माहौल बन चुका था। ढंडारी काण्ड के बाद काफ़ी मज़दूर असुरक्षित महसूस करने के कारण गाँव चले गये थे।

लगता है यहाँ के फ़ैक्टरी मालिकों और प्रशासन ने शायद कोई सबक़ नहीं लिया या फिर उन्हें मज़दूरों की चिन्ता नहीं। ऐसे ही हालात लुधियाना के बाहरी औद्योगिक इलाक़े में भी बने हुए हैं। एक मज़बूत संगठन की सख़्त ज़रूरत है, क्योंकि बिना संगठन और योजना के स्वत:स्फूर्त कार्रवाइयों के ज़रिये मज़दूर अपने संघर्षों को अंजाम तक नहीं पहुँचा सकते। पिछले से सबक़ लेकर संघर्ष की दिशा तय करना एक संगठन द्वारा ही सम्भव हो सकता है। दमन का मुक़ाबला भी सांगठनिक ताक़त के साथ ही किया जा सकता है।

इन घटनाओं में प्रशासन और फ़ैक्टरी मालिकों की लचर कार्रवाई के विरोध में टेक्सटाइल होज़री कामगार यूनियन, कारख़ाना मज़दूर यूनियन और नौजवान भारत सभा की ओर से डिप्टी कमिश्नर कार्यालय, लुधियाना में 18 जून को प्रदर्शन किया गया। संगठनों ने प्रदर्शन की तैयारी के लिए एक पर्चा भी जारी किया, जो टोलियाँ बनाकर शहर के मज़दूरों तक पहुँचाया गया और उपरोक्त माँगें अपने मालिकों और प्रशासन से हासिल करने के लिए कहा गया। भविष्य में एक मज़बूत संगठन बनाने का आह्वान किया गया, जिसके दम पर ही ऐसी घटनाओं को रोक पाने और फ़ैक्टरियों के अन्दर श्रम क़ानून लागू करवाने के लिए मालिक और प्रशासन पर दबाव बनाया जा सकता है। श्रम विभाग से कचहरी तक मज़दूरों के परिवार समेत नारे लगाते और पर्चे बाँटते हुए पैदल मार्च किया गया। डी.सी. कार्यालय पर प्रदर्शन करके माँगपत्र दिया गया जिसमें शहर में मज़दूरों की सुरक्षा का इन्तजाम, पीड़ित मज़दूरों का मुफ़्त इलाज और नुक़सान तथा हर्ज़ाने की माँग, सुनसान सड़कें और गलियों में रोशनी का पूरा प्रबन्ध करना, सारे मज़दूरों का बैंक खाता खुलवाना और मज़दूरों की सहमति से तनख़्वाह बैंक खाते में डालना, वेतन वाले दिन जल्दी छुट्टी करना, फ़ैक्टरी पहचान पत्र और हाज़िरी कार्ड बनाना, फ़ैक्टरी से कमरे तक पहुँचाने के लिए सवारी के इन्तज़ाम की पूरी ज़िम्मेदारी फ़ैक्टरी मालिक द्वारा उठाना, फ़ैक्टरी के अन्दर श्रम क़ानून लागू करने आदि की माँग रखी गयी। मज़दूरों के गुस्से को देखकर माँगपत्र लेने के लिए डी.सी. को प्रदर्शनकारियों के बीच आना पड़ा। यहाँ भी मज़दूरों के प्रति प्रशासन का रवैया अड़ंगेबाज़ी वाला था। लोगों के बीच आकर माँगपत्र लेना डी.सी. को गवारा नहीं था। जब उसे इन घटनाओं को रोकने और मज़दूरों की समस्याओं को जल्दी हल करने का भरोसा दिलाने को कहा गया तो उसने कहा कि उसे इस मसले की जानकारी ही नहीं है। जबकि कई दिनों से अख़बारों, पर्चों के माध्यम से इन माँगों को उठाया गया था। अपने शहर की बड़ी आबादी समस्याओं से घिरी रहे और प्रशासकों को पता ही ना हो, यह बात ख़ुद एक सवाल है कि जो लोग प्रशासन तक पहुँच नहीं पाते उनकी सुनवाई कौन करेगा?

मज़दूर नेताओं ने साथियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि मज़दूरों को हमेशा ही ज़ुल्म-अन्याय के ख़िलाफ़ जूझना पड़ा है, हमें भी इन सरकारों की तरफ़ ताकना छोड़कर अपनी रक्षा करने के लिए ख़ुद आगे आना पड़ेगा। अन्त में ज़ोरदार नारे लगाते हुए प्रशासन को चेतावनी दी गयी कि अगर माँगों पर जल्दी कार्रवाई नहीं हुई तो मज़दूर तीखे संघर्षों की राह पर चलने को मजबूर होंगे। धरने को टेक्सटाइल होज़री कामगार यूनियन की तरफ़ से राजविन्दर, ताज मोहम्मद, कारख़ाना मज़दूर यूनियन की तरफ़ से लखविन्दर और नौजवान भारत सभा के छिन्दरपाल ने सम्बोधित किया।

– राजविन्दर

चुनावी मौसम में याद आया कि मज़दूर भी इंसान हैं

दिल्ली में चुनावी दंगल शुरू होने वाला है जिसमें कांग्रेस और भाजपा दोनों पहले से अपने सारे दाँव-पेंच लगा रहे हैं कि कैसे जनता को भरमाकर पाँच साल लूटने का ठेका हासिल किया जाये। एक तरफ़ शीला दीक्षित सरकार अन्नश्री, लाडली योजना से लेकर अवैध कालोनी को पास करने का गुणगान कर रही है, तो दूसरी तरफ भाजपा बिजली के दाम में 30 प्रतिशत छूट से लेकर तमाम लम्बे-चौड़े वादे कर रही है। साफ़ है कि पूँजीवादी चुनाव में जीते कोई हार जनता की तय है।

इस बार चुनावी दंगल में भाजपा मजदूर आबादी को भी अपने झाँसे में लेने के लिए तीन-तिकड़में कर रही है। अभी 10 जुलाई को दिल्ली भाजपा के अध्यक्ष विजय गोयल ने राजधानी के असंगठित मजदूरों के लिए असंगठित मजदूर मोर्चा का गठन किया है जिसमें रेहड़ी-रिक्शा चालक, ठेका मजदूर, सेल्समैन, सिलाई मज़दूर से लेकर भवन निर्माण पेशे के मज़दूर शामिल है जो भयंकर शोषण और नारकीय परिस्थितियों में काम करते है लेकिन सवाल उठता है कि इन चुनावी मदारियों को हमेशा चुनाव से चन्द दिनों पहले ही मेहनतकश आबादी की बदहाली क्यों नज़र आती है। दूसरे, भाजपा जिन मज़दूरों का शोषण रोकने की बात कर रही है उनका शोषण करने वाले कौन हैं?

दिल्ली में असंगठित क्षेत्र में मज़दूरों की संख्या क़रीब 45 लाख है जिनमें से एक-तिहाई मज़दूर व्यापारिक प्रतिष्ठानों, होटलों और रेस्तराँ आदि में लगे हैं। क़रीब 27 प्रतिशत कारख़ाना उत्पादन में लगे हैं। बाकी मज़दूर आबादी निर्माण क्षेत्र यानी इमारतें, सड़कें, फ्लाईओवर आदि बनाने में लगी हुई है। अपवादों को छोड़कर ये सभी मज़दूर अस्थायी आधार पर नौकरी करते हैं, यानी उनके रोज़गार की कोई सुरक्षा नहीं हैं और वे पूरी तरह ठेकेदार या जॉबरों के अधीन होते हैं। वैसे ख़ुद दिल्ली सरकार की मानव विकास रपट 2006 में यह स्वीकार किया गया है कि ये मज़दूर जिन कारख़ानों में काम करते हैं उनमें कार्य करने की स्थितियाँ इन्सानों के काम करने लायक़ नहीं हैं। मालिक और ठेकेदार सारे श्रम क़ानूनों को अपनी जेब में रखकर घूमते हैं। न्यूनतम मज़दूरी, आठ घण्टे काम जैसे 260 क़ानून काग़ज़ों पर ही शोभा देते हैं। असंगठित मज़दूरों की यह हालत दिल्ली ही नहीं बल्कि पूरे देश के असंगठित मज़दूरों की है।

भाजपा ने असंगठित मज़दूर मोर्चा तो बना लिया लेकिन सवाल उठता है कि इन मज़दूरों का भयंकर शोषण रोकने के लिए क्या भाजपा असल में कोई क़दम उठायेगी, क्योंकि अगर वज़ीरपुर, समयपुर बादली औद्योगिक क्षेत्र से लेकर खारी बावली, चाँदनी चौक या गाँधी नगर जैसी मार्किट में 12-14 घण्टे काम करने वाले मज़दूरों का भयंकर शोषण वही मालिक या व्यापारी कर रहे हैं जो भाजपा या कांग्रेस के व्यापार प्रकोष्ठ और उद्योग प्रकोष्ठ में भी शामिल हैं और इन्हीं के चन्दों से चुनावबाज पार्टियाँ अपना प्रचार-प्रसार करती है तो साफ़ है कि ये पार्टियाँ अपने सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी के ख़िलाफ़ मज़दूर हितों के लिए कोई संघर्ष नहीं चलाने वाली। वैसे भी चुनावी राजनीति में सभी पार्टियाँ मज़दूरों का नामलेवा तो बनना चाहती है लेकिन जमीनी स्तर पर उतर कर न तो मज़दूरों के हक़-अधिकारों के लिए आवाज़ उठाती हैं, न ही मज़दूरों के चल रहे संघर्ष में कभी भागीदारी करती हैं। इसलिए पूरे मज़दूर वर्ग को यह समझने की ज़रूरत है कि इन चुनावी घोषणाओं से उनके हक़-अधिकार नहीं मिलने वाले बल्कि मज़दूरों को ख़ुद एकजुट होकर अपने हक़ों के संघर्ष के लिए आगे आना होगा।

– अजय

भारतीय मज़दूर वर्ग की पहली राजनीतिक हड़ताल

(23-28 जुलाई, 1908)

मज़दूर संघर्षों की शृंखला की एक अभूतपूर्व कड़ी

"हिन्दुस्तान के जनवादी तिलक को अंग्रेज गीदड़ों द्वारा सुनायी गयी बदनाम सज़ा – उन्हें लम्बे देश-निर्वासन की सज़ा दी गयी, ब्रिटिश हाउस ऑफ़ कामन्स में एक प्रश्न ने यह उजागर किया कि हिन्दुस्तानी जूरी-सदस्यों ने उन्हें बरी करने के पक्ष में मत दिया और फैसला अंग्रेज़ जूरी-सदस्यों के मतों से पास किया गया – पूँजीपतियों के पालतू कुत्तों द्वारा की गयी इस प्रतिशोधात्मक कार्रवाई के फलस्वरूप बम्बई में सड़कों पर प्रदर्शन और हड़ताल भड़क उठी है। भारत में भी सर्वहारा अब सचेत राजनीतिक जनसंघर्ष के स्तर तक विकसित हो चुका है।" मज़दूरों के महान नेता लेनिन के ये शब्द राष्ट्रीय आन्दोलन के लोकप्रिय नेता बालगंगाधर तिलक पर चले मुक़दमे और विरोधस्वरूप मज़दूर वर्ग की शानदार हड़ताल के बारे में हैं। 23 से 28 जुलाई सन् 1908 का समय भारतीय मज़दूर आन्दोलन का वह गौरवशाली इतिहास है, जिसे मुम्बई के मज़दूरों ने अपने ख़ून से लिखा था। बंगाल के आतंकवाद पर 'केसरी' नामक समाचारपत्र में कुछ लेख लिखने के कारण अंग्रेजों द्वारा लोकमान्य तिलक पर राजद्रोह का मुक़दमा चलाया गया और उन्हें 6 साल के लिए देश निकाला दे दिया गया। जब 24 जून, 1908 को मुम्बई में तिलक की गिरफ़्तारी हुई तो न सिर्फ़ मुम्बई में बल्कि शोलापुर, नागपुर समेत पूरे देश में इसके विरोध में जनता सड़कों पर उमड़ आयी थी। किन्तु मुम्बई के मज़दूर इस संघर्ष में सबसे आगे थे। मज़दूरों द्वारा किया गया यह संघर्ष एक व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि पूरी औपनिवेशिक व्यवस्था के अन्याय के ख़िलाफ़ संघर्ष का प्रतीक है। मज़दूर अपनी आर्थिक माँगों के लिए नहीं बल्कि गोरे दमन के ख़िलाफ़ लड़ रहे थे। यह दिखाता है कि मज़दूर वर्ग औपनिवेशिक गुलामी के ख़िलाफ़ संघर्ष का बिगुल उसी समय बजा चुका था, जब देश के पूँजीपति वर्ग के नेता ख़ुद को अंग्रेजी हुकूमत की वफ़ादार प्रजा बताते हुए सरकार से कुछ रियायतों की भीख माँग रहे थे।

तिलक पर मुक़दमा चलने के दौरान हर दिन मुम्बई के मज़दूरों ने विशाल प्रदर्शन और हड़तालें की थीं, जिनमें अक्सर पुलिस के साथ हिंसक मुठभेड़ें हो जाती थीं। फलस्वरूप सेना को भी बुला लिया गया, लेकिन देसी पुलिस का प्रयोग करने में अंग्रेज़ अन्त तक बचते रहे थे। जब 13 जुलाई से तिलक पर मुक़दमा चलना शुरू हुआ, तो उसी दिन अदालत के सामने जनता की पुलिस से हिंसक झड़प हुई थी। उस दिन अंग्रेज़ों की सेना के हथियारबन्द दस्तों ने रास्तों को इस तरह से घेर रखा था कि मज़दूर अपने कारख़ानों से निकलकर अदालत तक न पहुँच सकें। इसके बावजूद ब्रिव्स्कर्ण मिल के मज़दूरों ने हड़ताल करके जुलूस निकाला। 14, 15 और 16 को भी ऐसा ही हुआ। मज़दूर जुलूस निकालते और मिलिटरी उन्हें आगे बढ़ने से रोकती और जूलूस को तोड़ने के प्रयास करती। 17 जुलाई को मज़दूरों के आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। दोपहर बाद लक्ष्मीराम, ग्लोब, क्रिसेंट, जमशेद, नारायण, करीमभाई, मोहम्मदभाई, ब्रिटानिया, फीनिक्स, ग्रीव्सकाटन इत्यादि कपड़ा मिलों के मज़दूर हड़ताल करके बाहर निकल आये। क़रीब 20,000 मज़दूरों ने औद्योगिक इलाक़े में जुलूस निकाला और सभी मज़दूरों से कारख़ानों से बाहर निकल आने का आह्वान किया गया। 18 जुलाई को भी यही हुआ, किन्तु इस दिन पुलिस ने मज़दूरों पर गोली चला दी। 19 जुलाई को मुम्बई के माहिम और परेल इलाक़े के 60 कारखानों और रेलवे वर्कशॉप के क़रीब 65,000 मज़दूर हड़ताल कर बाहर आ गये। 20 जुलाई को मज़दूरों पर फिर से गोलियाँ चलायी गयीं। 21 जुलाई के दिन संघर्ष ने और भी विराट रूप धारण कर लिया। संग्राम में औद्योगिक मज़दूरों के साथ गोदी मज़दूर, दुकान मज़दूर, दुकानदार, और छोटे-मोटे व्यापारी भी शामिल हो गये। 22 जुलाई को 5 हड़ताली मज़दूरों को गिरफ़्तार करके उन्हें कठोर सजाएँ दी गयीं ताकि दूसरे इससे डर सकें। साथ ही यह दिन तिलक पर मुक़दमे की सुनवाई का आख़िरी दिन भी था। उन्हें 6 साल के कठोर कारावास, 1000 रुपये के जुर्माने समेत देश-निकाले की सज़ा दी गयी। उसी दिन मज़दूरों द्वारा 6 दिन की व्यापक हड़ताल का निर्णय (तिलक की कैद के हरेक साल के लिए एक दिन की हड़ताल के रूप में) लिया गया।

23 जुलाई को करीब एक लाख मज़दूरों ने हड़ताल में हिस्सेदारी की। मुम्बई की आम जनता भी मज़दूरों के साथ आ खड़ी हुई। 24 जुलाई को संघर्षरत जनता की लड़ाई सेना के हथियारबन्द दस्तों के साथ फिर से शुरू हो गयी। गोलियों का जवाब ईंटो और पत्थरों की बारिश से दिया गया। बहुत से मज़दूर आम जनता के साथ शहीद हुए। इसी बीच पुलिस कमिश्नर ने मिल मालिकों से हड़ताल का विरोध करने के लिए कहा। मालिकों ने फैसला किया कि 'उद्योग की भलाई' के लिए मज़दूरों को हड़ताल बन्द कर देनी चाहिए। मिल मालिक एसोसिएशन के अध्यक्ष हरिलाल भाई विश्राम ने मिलमालिकों को सलाह दी -'आपकी ज़िम्मेदारी यह देखना है कि सरकार को किसी तरह परेशान न किया जाये, क़ानून-क़ायदों को मानकर चला जाये। आप मज़दूरों को काम पर वापस जाने के लिए दबाव डालिए।' परन्तु मज़दूरों ने मालिकों-पुलिस-प्रशासन की तिकड़मों को धता बताते हुए अपने संघर्ष को जारी रखा। देश की जनता के सामने किये गये 6 दिन की हड़ताल के वायदे को मज़दूरों ने शब्दश: निभाकर अपने जुझारूपन को स्थापित कर दिया। शहर के मध्यवर्ग और श्रमिकों के दूसरे हिस्सों ने मज़दूरों का साथ दिया। पुलिस और सेना की तरफ़ से बार-बार गोलियाँ चलायी गयीं। इस संघर्ष में करीब 200 मज़दूरों और आम लोगों ने अपनी शहादत दी और बहुत से घायल हुए।

जिस तरह आज़ादी की लड़ाई में मज़दूर-किसानों की शानदार भूमिका और मेहनतकशों की लाखों-लाख कुर्बानियों की चर्चा तक नहीं की जाती उसी तरह मज़दूरों के इस ऐतिहासिक संघर्ष पर भी साज़िशाना तरीक़े से राख और धूल की परत चढ़ाकर इसे भुला दिया गया। लगता है हमारे तथाकथित इतिहासकारों और नेताओं को इन संघर्षों का ज़िक्र करते हुए भय और शर्म की अनुभूति होती है। 15 अगस्त और 26 जनवरी को झण्डा फहराते हुए 'साबरमती के सन्त' के कारनामों की तो चर्चा होती है, अंग्रेज़ों के दल्ले तक 'महान स्वतंत्रता सेनानी' बन जाते हैं किन्तु जब देश की मेहनतकश जनता ने अपने ख़ून से धरती को लाल कर दिया था, और जिन जनसंघर्षों के दबाव के कारण अंग्रेज़ भागने को मजबूर हुए उनका कभी नाम तक नहीं लिया जाता। मज़दूरों की पहली राजनीतिक हड़ताल, अहमदाबाद, कानपुर, नागपुर आदि के मज़दूरों के संघर्ष, गिरनी कामगार यूनियन का गौरवमयी इतिहास, शोलापुर कम्यून का संघर्ष, नौसेना और सेना की बग़ावतें, तेलंगाना, तेभागा पुनप्रा-वायलार और कय्यूर के जुझारू किसान संघर्ष, पंजाबी जनता की डण्डा फौज, भगतसिंह और उनके साथियों के संगठन एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारी इतिहास इत्यादि के बारे में कितने लोग जानते हैं? पूँजीवादी मीडिया कब इनका नाम लेता है, और नाम ले भी क्यों? क्योंकि शासक वर्ग जानता है कि यदि मेहनतकश अवाम से उसका प्रतिरोध का हथियार छीनना है तो उसे उसके क्रान्तिकारी इतिहास से काट देना ही काफ़ी है। संसदीय वामपंथी बातबहादुर और उनकी ट्रेड-यूनियनें (जिन्हें दलाल यूनियनें कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी) तो मज़दूरों का नाम लेकर और उन्हें दुवन्नी-चवन्नी के आर्थिक घेरों में उलझाकर गद्दारी ही करती रही हैं।

आज सबसे बड़ा काम है मज़दूर वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन से परिचित कराया जाय। इसी कड़ी में हमें अपने पुरखों को भी याद करना होगा; सिर्फ़ याद करने के लिए नहीं बल्कि अपने संघर्षों के लिए प्रेरित होने के लिए भी। शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि आज यही हो सकती है कि मज़दूरी की व्यवस्था के नाश के उनके सपनों को हम कितनी शिद्दत के साथ अपने व्यवहार में लागू करते हैं। मुम्बई की सड़कों पर बहा हमारे पुरखों का ख़ून हमें आवाज़ दे रहा है कि शोषण-उत्पीड़न-अत्याचार की इस अमानवीय और नारकीय ज़िन्दगी से मज़दूर वर्ग की आज़ादी के लिए लड़ने का ठेका दूसरों को देने की बजाय अपनी और साथ ही साथ पूरे समाज की मुक्ति का परचम हम खुद अपने हाथों में थामकर आगे बढ़ें।

– अरविन्द

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के कमाण्डर, देश के सच्चे क्रान्तिकारी सपूत, आज भी सच्ची आज़ादी और इंसाफ़ के लिए लड़ रहे हर नौजवान के प्रेरणास्त्रोत

चन्द्रशेखर आज़ाद

के जन्मदिवस (23 जुलाई) के अवसर पर

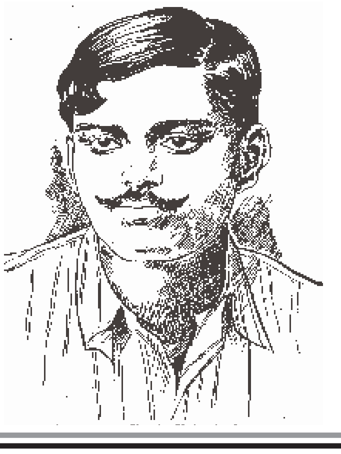

शहादत थी हमारी इसलिए
कि आज़ादी का बढ़ता हुआ सफ़ीना
रुके न एक पल को
मगर ये क्या, ये अँधेरा?
ये कारवाँ रुका क्यों है?
बढ़े चलो, कि अभी काफ़िला-ए-इंक़लाब को
आगे, बहुत आगे जाना है....

माकपा और सीटू – मज़दूर आन्दोलन के सबसे बड़े गद्दार

लुधियाना के मज़दूरों ने मालिकों द्वारा लूट-शोषण-दमन-अन्याय के खिलाफ़ समय-समय पर एकजुट आवाज़ उठाते हुए मिसालपूर्ण साहस, जुझारूपन और कुर्बानियों का परिचय दिया है। मज़दूरों ने यह साबित किया है कि अगर मज़दूर एकजुट होकर जुझारू संघर्ष लड़ते हैं तो मालिकों और उनकी सेवा करने वाले पुलिस-प्रशासन और सरकार को लोहे के चने चबाने पर मज़बूर कर सकते हैं। लेकिन यह भी एक कड़वा सच है कि आज लुधियाना का मज़दूर आन्दोलन ठहराव का सामना कर रहा है। मज़दूरों के समय समय पर उठने वाले संघर्षों की हार ने भयंकर निराशा पैदा की है। मज़दूर इतना हारों से निराश नहीं होते जितना कि नेतृत्व करने वालों की गद्दारी से। लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन के साथ भी ऐसा ही हुआ है। गद्दारी करने वाले संगठनों-नेताओं की संख्या तो काफ़ी है लेकिन सबसे अधिक बड़ी गद्दार सी.आई.टी.यू. (सीटू) है जो कि चुनावबाज नकली कम्युनिस्ट पार्टी सी.पी.आई (एम) का मज़दूर फ्रण्ट है। अपना वोट बैंक बढ़ाने के लिए सी.पी.आई. (एम) सीटू का इस्तेमाल करती है। चुनावबाज राजनीति करने वाले हमेशा मालिकों की दलाली करते हैं और जनता के साथ धोखा।

यही काम सीपीआई (एम) और सीटू का है। जहाँ इन्होंने पूरे देश में मज़दूर विरोधी-जन विरोधी काली क़रतूतों के कीर्तिमान स्थापित किए हैं और लाल झण्डे को कलंकित व बदनाम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है वहीं लुधियाना के मज़दूर आन्दोलन में भी इन्होंने मज़दूरों से गद्दारी और मालिकों की दलाली के, मज़दूर आन्दोलन की पीठ में छुरा खोपने के सारे रिकार्ड तोड़ डाले हैं। ऑटो पार्टस, साईकिल इण्डस्ट्री, टायर, स्टील, टेक्सटाइल, होजरी आदि सभी प्रकार के उद्योगों के मज़दूरों के समय-समय पर उठने वाले संघर्षों में इनकी मालिक भक्ति और इनका घोर मज़दूर विरोधी, कलंकित-काला चेहरा मज़दूरों ने बख़ूबी देखा है। लुधियाना के मज़दूर काफ़ी हद तक इनकी काली करतूतों के बारे में जानते हैं लेकिन फिर भी बजाज सन्स इण्ड. लि. और हीरो साईकिल जैसे कारखानों में तथा मज़दूर बस्तियों में कुछ लोगों को ये अभी भी अपने जाल में फँसाए हुए हैं। ये दलाल लुधियाना के मज़दूरों को अपने जाल में फँसाने में हमेशा लगे रहते हैं। इसलिए इन दलालों का लगातार पर्दाफाश करते रहना ज़रूरी है।

सीटू/सीपीआई (एम) की एक बेहद घटिया ताज़ा करतूत बजाज सन्स इण्डिया लि. में सामने आई है। सन् 2005 में इस कारखाने के मज़दूरों ने एकजुट संघर्ष का रास्ता चुना था। सीटू के दलाल चरित्र के बारे में न जानने के कारण संघर्षरत मज़दूर इसके जाल में फँस गए और यूनियन का नेतृत्व सौंप दिया। लेकिन जल्द ही इसके नेताओं के चंदा हड़पने और मालिकों की दलाली जैसी काली करतूतें सामने आने लगी। मज़दूरों ने सोचा कि शायद नेता गलत है और संगठन ठीक है। नेता बदल दिया गया। सीटू के नए नेता और अन्य छुटभैया नेताओं के झुण्ड ने पहले वाले नेता को भी पीछे छोड़ दिया। इन्होंने ऐसे काले कारनामे कर दिखाये हैं कि अब इस कारखाने के किसी भी मज़दूर को कोई भ्रम नहीं रह गया है कि मालिक-मैनेजमेण्ट और सीटू के सारे नेता मिलकर चलते हैं व मिलकर मज़दूरों को लूटने का काम करते हैं। सीटू के प्रधानों द्वारा मज़दूरों से मारपीट, गालीगलौज़, धमकाकर जबरदस्ती चन्दा बटोरने और हड़पने का काम तो हो ही रहा था कि अब इनकी एक और करतूत के कारण बजाज सन्स मज़दूरों में सीटू के प्रति भयंकर रोष है।

पंजाब सरकार द्वारा 1 मार्च 2013 से नये न्यूनतम वेतन लागू किए जाने के आदेश जारी हुए हैं। बजाज सन्स मज़दूरों की सीटू नेताओं से माँग थी कि वे उनसे इतना चंदा बटोरते हैं तो नया न्यूनतम वेतन भी लागू करवायें। मज़दूरों ने सीटू प्रधानों को कहा कि पिछले नेताओं की तरह पीठ में छुरा घोंपते हुए प्रोडक्शन बढ़ाने का समझौता कतई न करें। सीटू नेताओं ने मज़दूरों के सामने वायदा किया कि प्रोडक्शन हरगिज नहीं बढ़ाई जाएगी। लेकिन जब समझौता करने बैठे तो प्रोडक्शन बढ़ाने का समझौता कर डाला। समझौते के बाद भी सीटू प्रधान मज़दूरों को झूठ बोलते रहे कि प्रोडक्शन नहीं बढ़ी है। लेकिन जब कम्पनी ने प्रोडक्शन बढ़ाने का आदेश जारी कर दिया तो सीटू प्रधान मज़दूरों को कहने लगे कि प्रोडक्शन तो बढ़ानी ही पड़ेगी। कम्पनी की सी-103 युनिट में आम तौर पर दोगुना से भी अधिक प्रोडक्शन बढ़ा दी गई है। दूसरी यूनिटों में भी जल्द ही प्रोडक्शन बढ़ा दी जाएगी। सीटू द्वारा मज़दूरों पर थोपे गए डिपार्टमेण्टों के प्रधान मज़दूरों के साथ सुपरवाइजरों की तरह पेश आ रहे हैं और प्रोडक्शन बढ़ाने के लिए दबाव बना रहे हैं। मालिकों की दलाली और मज़दूरों की पीठ में छुरा घोंपने की यह कहानी यहीं नहीं रुकती। इन दलालों ने लगभग मज़दूरों की एक बड़ी सूची बनाकर कम्पनी मैनेजमेण्ट को सौंप दी है और कहा है कि ये लोग प्रोडक्शन बढ़ाने का समझौता लागू होने में रूकावटें खड़ी करेंगे। इस सूची में उन मज़दूरों के नाम हैं जो सीटू का किसी न किसी प्रकार विरोध करते रहते हैं। सीटू प्रधानों ने कम्पनी मैनेजमैंट को कहा कि इन मज़दूरों को या तो डरा-धमकाकर, कड़ी मेहनत वाले डिपार्टमेण्ट में भेजकर, पैसे रोककर या अन्य किसी हथकण्डे से झुकाया जाए या फैक्ट्री से निकाल दिया जाए। बजाज सन्स के मज़दूरों का कहना है कि दलाल यूनियनें बहुत देखीं हैं लेकिन सीटू का मुक़ाबला इस मामले में कोई नहीं कर सकता। बिलकुल ठीक कहते हैं बजाज सन्स के मज़दूर साथी। सीटू से बड़ा भितरघाती-दलाल संगठन और कोई है भी नहीं। इन्होंने आज तक लाखों रुपया मज़दूरों से इकट्ठा किया है और हड़प लिया है। चंदे का कोई हिसाब आज तक मज़दूरों को नहीं दिया है। कम्पनी से जो पिछले दरवाजे से पैसा खाते रहे हैं वह अलग है। मज़दूरों की इच्छाओं के विपरीत समझौते होते रहे हैं। आज बजाज सन्स का कोई भी मज़दूर सीटू वालों पर विश्वास नहीं करता। सीटू बजाज में अगर आज भी टिकी हुई है तो इसलिए कि उसे मैनेजमेण्ट का पूरा साथ प्राप्त है। जो भी मज़दूर सीटू वालों का विरोध करता है उस पर कम्पनी से कारवाई करवा दी जाती है। बजाज सन्स कम्पनी के मज़दूरों को सीटू की गुण्डावाहिनी से पीछा तो छुड़ाकर अपनी सच्ची और जुझारू यूनियन क़ायम करने के लिए आगे आना होगा।

बजाज सन्स में अपने काले कारनामों के ग्रन्थ में यह नया अध्याय जोड़ने वाले सीटू-सीपीआईएम वही हैं जिन्होंने 2004 से लुधियाना के ऑटो पार्टस, स्टील व साइकिल इण्डस्ट्री में उठने वाले मज़दूरों के साहसपूर्ण, कुर्बानियों भरे, शानदार जुझारू संघर्ष को दलाली, कायरता, समझौतापरस्ती और भितरघात के ज़रिए बिखेर डाला था। देश में हर जगह इनका यही काम है। लाल झण्डे को दागदार, कलंकित करने की कोशिश करने वाले इन नकली कम्युनिस्टों को कभी माफ़ नहीं किया जा सकता। इनको पूरी तरह नंगा करने और जन आन्दोलनों से पूरी तरह बाहर फेंकने के लिए क्रान्तिकारी मज़दूरों को पूरा ज़ोर लगा देना चाहिए। मज़दूर आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए जहाँ मज़दूरों को उनके हक़-अधिकारों के बारे में, पूँजीवाद से मुक्ति के संघर्ष में उनकी ऐतिहासिक भूमिका के बारे में, देश-दुनिया के मज़दूरों के गौरवमयी संघर्षों-आन्दोलनों-क्रान्तियों के बारे में, आज के समय में मज़दूरों के राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक संघर्षों को आगे बढ़ाने की सही रणनीति और कार्यनीति के बारे में बताने और जागृत करने के लिए बड़े स्तर पर प्रचार और आन्दोलन चलाने की जरूरत है वहीं यह भी ज़रूरी है कि सीटू-सीपीआईएम जैसे भितरघातियों के खिलाफ़ कड़ा संघर्ष किया जाए और इनकी काली क़रतूतों को व्यापक जनता के सामने लाया जाए।

दलालों और इनके द्वारा पैदा की गई निराशा से पीछा छुड़ाकर लुधियाना का मज़दूर आन्दोलन आगे बढ़ सकता है। बिगुल मज़दूर दस्ता के साथ जुड़कर टेक्सटाइल मज़दूरों ने लुधियाना में जो जुझारू और जनवादी संगठन खड़ा किया है वह इसकी अहम उदाहरण है। इसलिए सीटू-सीपीआई (एम) के भ्रमजाल में फँसे हुए मज़दूरों को इन दलालों की असलीयत को पहचानना होगा, इनके चंगुल से निकलना होगा। मज़दूरों को सीटू और सीपीआई (एम) वालों से सतर्क रहना होगा और इन्हें अपने संघर्षों-अन्दोलनों से हमेशा दूर रखना होगा। इन दलालों द्वारा पैदा की गई निराशा से उभरना होगा, एक नई शुरुआत करनी होगी। जो मज़दूर सीटू-सीपीआई (एम) जैसे दलालों के जाल में नहीं फँसे हैं, जो चाहते हैं कि दलालों द्वारा पैदा की गई निराशा से मज़दूरों को उभारा जाए और जो मज़दूर जुझारू और क्रान्तिकारी भावना रखते हैं- उन सभी मज़दूरों को मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी और सच्चे यूनियन संगठन खड़े करने के लिए पूरा ज़ोर लगा देना होगा क्यों कि मज़दूरों के सामने एक क्रान्तिकारी विकल्प पेश किए बिना मज़दूर आन्दोलन को सी.पी.आई.एम. व सीटू जैसे भितरघातियों के चुंगुल से निकालना और इनके द्वारा पैदा की गई निराशा से उभारना सम्भव नहीं है।

– बिगुल संवाददाता, लुधियाना।

यूनान में फासीवाद का उभार

(पेज 10 से आगे)

किसी भी पार्टी की क्यों न हो। हम देख सकते हैं कि भारत के फासीवादी भी यही कुछ कहते और करते हैं। गोल्डन डॉन "किफायत की नीतियां" का भी विरोध कर रही है पर इसके विरोध की बुनियाद और है। बेल-आउट पैकेज हासिल करने के लिए ये नीतियां लागू करने की शर्तों को गोल्डन डॉन एक राष्ट्रीय गर्व-सम्मान का मसला बना कर अंधी देशभक्ति को हवा दे रही है। दूसरी बात, अगर यूनान बेल-आउट पैकेज नहीं भी लेता, तो भी पूँजीवादी ढाँचे के अन्दर आर्थिक संकट में से निकलने का रस्ता आम लोगों की तबाही में से हो कर ही निकलता है। सार्वजनिक सेवाओं पर होते हुए खर्च में कटौती, छँटनी और आम लोगों पर टैक्सों का बोझ, इसके बिना पूँजीवाद के लिए संकट में से निकलना असम्भव है। और साथ ही, यह संकट जितना अधिकतर वैश्विक रूप अपनाता चला जाएगा, जंगों-युद्धों का सिलसिला भी अधिकतर विराट रूप धारण करता चला जाएगा। सत्य यही है कि पूँजीवादी ढाँचे के अन्दर "किफायत की नीतियां" लागू करने के बिना किसी भी बुर्जुआ पार्टी के पास कोई रास्ता न तो है ही और न ही पूँजीपति वर्ग इससे अधिक कुछ करना चाहता है। गोल्डन डॉन के भी पास यही रस्ता है और यही कुछ वह भी करेगी जब सत्ता में आएगी, पर वह अधिक नग्न तानाशाह आतंकी राज्यसत्ता के द्वारा इसको अंजाम देगी। पर फासीवादी राजनीति सत्ता में आने का रास्ता साफ करने के लिए हर तरह का झूठ बोलती है और बार-बार बोलती है।

जब आम लोगों का विरोध इस कर बढ़ जाता है कि वह पूँजीवाद की लूट की नीतियां को लागू होने में रुकावट बन जाता हैं और पूँजीवाद की पहली कतार की राजनीतिक पार्टियाँ सत्ता संभालने अर्थात लोगों पर डंडा चलाने में असमर्थ हो जाती हैं तो इस काम के लिए पूँजीवाद गोल्डन डॉन जैसी फासीवादी पार्टियों का सहारा लेता है। दूसरी ओर, यही वह ऐतिहासिक क्षण होते हैं जब समाज को आगे लेकर जाने वाली क्रांतिकारी ताकतों के पास लोगों के समक्ष पूँजीवादी ढाँचे के मनुष्य विरोधी चरित्र को पहले से कहीं अधिक नंगा करने और इसके होते हुए मानवता के लिए किसी भी किस्म के अमन-चैन की असंभवता और सब से ऊपर, पूँजीवादी ढाँचे के ऐतिहासिक रूप पर अधिक लम्बे समय के लिए बने रहने की असंभवता को स्पष्ट करने का अवसर होता है। यही वह समय होता है जब आम लोग बदलाव के लिए उठ खड़े होते हैं और उनकी शक्ति को दिशा देकर क्रांतिकारी ताकतें पूँजीवादी ढाँचे की जोंक को मानवता के शरीर से तोड़ सकती हैं। पूँजीवादी वर्ग के पहरेदार भी समझते हैं कि आर्थिक संकट, और साथ ही इसकी अभिव्यक्ति राजनीतिक संकट के दो ही मुमकिन नतीजे निकल सकते हैं – पहला है, क्रांति और पूँजीवादी ढाँचे को तबाह करके समाजवाद की स्थापना और दूसरा है, फासीवादी सत्ता स्थापित करके आम लोगों का दमन-उत्पीड़न, समाज की उत्पादक शक्तियों की तबाही और क्रांति को रोकने की लिए क्रांतिकारी ताकतों का दमन। साफ है कि पहला रास्ता आम श्रमिक लोगों के लिए मुक्ति लेकर आता है और दूसरा रास्ता पूँजीवाद की उम्र और साथ ही लोगों के दमन-उत्पीड़न के वर्षों को लम्बा करने का रास्ता है। पूँजीवादी वर्ग अपने टुकड़ों पर पलने वाली बुद्धिजीवी मण्डली, मीडिया तंत्र और फासीवादी राजनीति के हथियारों के साथ आम लोगों पर आक्रमण करता है, सब से ऊपर वह आम लोगों का मार्ग-दर्शन करने वाली विचारधारा अर्थात मार्क्सवाद पर आक्रमण करता है, वह लोगों की ताकत के बारे में समाज में संदेह पैदा करता है और श्रमिक लोगों की नेतृत्व में हुई क्रांतियों के इतिहास पर कूची फेरता है अथवा बदनाम करता है। ऐसे समय में आवश्यक होता है कि लोगों में उनकी मुक्ति की विचारधारा का प्रचार अधिक से अधिक हो, वह लामबंद हों और सबसे ऊपर उनके नेतृत्व के लिए सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी तैयार और मुस्तैद हो। यूनान भी कुछ ऐसे ऐतिहासिक पलों में गुजर रहा है। यूनान भविष्य में किस दिशा की तरफ बढ़ता है, यह इस बात पर निर्भर रहेगा कि किसका हाथ ऊपर रहता है, प्रतिगामी फासीवादी दल जो पूँजी की सेवा करती है, या फिर क्रांतिकारी ताकतों का। यूनान की घटनाएँ इस अर्थ में पूरी दुनिया के श्रमिक लोगों और उनका प्रतिनिधित्व करने वाली क्रांतिकारी राजनीति के लिए उस सबक को फिर से दुहरायेंगी जिसका पाठ इतिहास पहले अनेक बार पढ़ा चुका है। इतिहास में समाजवाद की घड़ी आती है, फिर आयेगी। सवाल है कि हम उसके लिए तैयार होंगे अथवा नहीं, और साथ ही हमें याद रखना होगा यह ऐतिहासिक सबक – **अगर हमने समाजवाद की घड़ी निकल जाने दी तो हमारी सजा होगी फासीवाद!**

हर साल लाखों माँओं और नवजात शिशुओं को मार डालती है यह व्यवस्था

किसी भी समाज की खुशहाली का अनुमान उसके बच्चों और माँओं को देखकर लगाया जा सकता है। लेकिन जिस समाज में हर साल तीन लाख बच्चे इस दुनिया में अपना एक दिन भी पूरा नहीं कर पाते और क़रीब सवा लाख स्त्रियाँ हर साल प्रसव के दौरान मर जाती हैं, वह कैसा समाज होगा, इसे कस्बे की ज़रूरत नहीं। आज़ादी के 66 साल बाद, जब देश में आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं की कोई कमी नहीं है, तब ऐसा होना शर्मनाक ही नहीं बल्कि एक घृणित अपराध है। और इसकी ज़िम्मेदार है यह पूँजीवादी व्यवस्था जिसके लिए ग़रीबों की ज़िन्दगी का मोल कीड़े-मकोड़ों से ज़्यादा नहीं है।

पूँजीवादी मीडिया गर्व से बताता है कि भारत इतनी तरक्की कर गया है कि यहाँ अमेरिका और इंग्लैण्ड से लोग इलाज कराने के लिए आ रहे हैं। लेकिन वह यह नहीं बताता कि पूरी दुनिया में जन्म के पहले दिन ही मरने वाले बच्चों में से 30 फ़ीसदी हमारे देश में हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन और कई अन्य संगठनों की एक रिपोर्ट (2007) के अनुसार पूरी दुनिया में हर साल प्रसव के दौरान 5.36 लाख स्त्रियों की मृत्यु हो जाती हैं इनमें से 1.17 लाख यानी क़रीब 25 प्रतिशत मौतें सिर्फ़ भारत में होती हैं भारत में प्रसव के दौरान हर 1 लाख में से 450 स्त्रियों की मत्यु हो जाती है। इस मामले में अफ्रीका के कई बेहद ग़रीब देशों से भी हम पीछे हैं। गर्भावस्था और प्रसव के दौरान मृत्यु के 47 प्रतिष्ठित मामलों में कारण शरीर में खून की कमी और

बहुत अधिक खून बहना होता है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि भारत सहित सभी विकासशील देशों में गर्भवती और जन्म देने वाली महिलाओं के मामलों में 99 फीसदी मौतें ग़रीबी, भूख और बीमारी के चलते होती हैं। खुद भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने 2007 में जारी रिपोर्ट 'एन.एफ.एच.एस.-3' में यह माना था कि माँओं की मृत्यु की ऊँचली दर का मुख्य कारण यह है कि ग़रीबी के कारण ज़्यादातर महिलाओं को समुचित डाक्टरी देखभाल नहीं मिल पाती। आज भी क़रीब 25 प्रतिष्ठित स्त्रियों को प्रसव के पहले या उसके बाद डाक्टरी देखभाल की कोई सुविधा नसीब नहीं हो पाती। गाँवों में ज़्यादातर महिलाओं का प्रसव घर पर ही दाई द्वारा कराया जाता है। अन्धविश्वास और शिक्षा की कमी से बहुतेरी स्त्रियाँ पूरे नौ महीने डाक्टरी सलाह से भी दूर रहती हैं। कस्बों और शहरों के आसपास की स्त्रियाँ प्रसव के लिए अस्पताल अक्सर तब पहुँचती हैं जब बहुत देर हो चुकी होती है। अगर उन्हें समय पर अस्पताल की सुविधा मिल जाये तो बहुतेरी माँओं ओर बच्चों की ज़िन्दगी बच सकती है।

दूसरी तरफ़ गाँवों में स्वास्थ्य सुविधाओं की हालत सुधरने के बजाय बिगड़ती जा रही है। आबादी के हिसाब से जितने प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र, सरकारी डिस्पेंसरी और जच्चा-बच्चा केन्द्र होने चाहिए उससे बहुत कम मौजूद हैं। जो हैं उनमें भी डाक्टर और स्टाफ नहीं रहते, दवाएँ काले बाज़ार में बिक जाती हैं। सरकार ने सबको स्वास्थ्य सुविधा मुहैया कराने की अपनी ज़िम्मेदारी से पूरी तरह हाथ खींच लिया है और इसे भी बाज़ार के हवाले कर दिया है। यानी जिसके पास पैसा है वह अपने लिए अच्छे से अच्छा डाक्टर ओर नर्सिंग होम की सुविधा हासिल कर ले, और जिसके पास मोटी फीस चुकाने को पैसा नहीं है वह तिल-तिलकर मरे। देश के सरकारी अस्पतालों में डाक्टरों और नर्सों के आधे से लेकर दो तिहाई तक पद खाली पड़े हैं, बहुत बड़ी आबादी के लिए कोई सरकारी अस्पताल उपलब्ध ही नहीं हैं, मगर इस कमी को पूरा करने के बजाय सरकार ने ए.एन.एम. और आशा बहू जैसी योजनाओं के जरिए अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया है। सरकारी अस्पतालों की हालत यह है कि राजधानी दिल्ली तक में लाखों की आबादी वाली ग़रीबों की कई बस्तियों के आसपास जल्दी डाक्टर नहीं मिलता।

पूँजीवादी मीडिया ने लोगों के दिमागों को इस तरह से अनुकूलित कर दिया है कि ज़्यादातर लोगों में अपने अधिकारों की चेतना ही नहीं रह गयी है। अक्सर वे कहते हैं कि सरकार सबका दवा-इलाज कहाँ से करायेगी। मगर सच तो यह है कि आज़ादी के समय देश की जनता से वादा किया गया था कि रोजी-रोटी, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य सरकार की ज़िम्मेदारी होगी, और सरकार के लिए ऐसा करना पूरी तरह मुमकिन था।

प्रसव के समय होने वाली मौतों की संख्या इसलिए और भी बढ़ जाती है क्योंकि भारत में अधिकतर माँएँ कुपोषण और खून की कमी की शिकार होती हैं। इससे उनमें और गर्भस्थ शिशु में रोगरोधक क्षमता की कमी हो जाती है। इसकी वजह से हल्का-सा संक्रमण भी उनके लिए जानलेवा हो जाता है।

भारत के बच्चे पड़ोसी ग़रीब देशों बंगलादेश और नेपाल से भी ज़्यादा कुपोषित हैं। बंगलादेश में शिशु मृत्यु दर 48 प्रति हज़ार है जबकि भारत में यह 67 प्रति हज़ार है, यानी पैदा होने वाले 1000 बच्चों में से 67 पैदा होते ही मर जाते हैं। भारत में बच्चों में कुपोषण की दर 55 प्रतिशत है। कुछ रिपोर्टों में इसे 70 प्रतिशत तक बताया गया है। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में करीब एक करोड़ बच्चों का कुपोषण के कारण शारीरिक विकास बाधित है।

हमारे समाज में स्त्रियों की दोयम दर्जे की स्थिति के कारण भी उनका स्वास्थ्य उपेक्षित रहता है। घरों में अक्सर स्त्रियाँ सबसे बाद में, बचा हुआ खाना खाती हैं। उन्हें पौष्टिक भोजन सबसे कम मिलता है। यहाँ तक कि कारख़ानों और खेतों में काम करने वाली स्त्रियाँ दोहरे काम का बोझ उठाने के बावजूद पुरुषों के मुकाबले ख़राब खाना खाती हैं। इसकी वजह से उनमें खून की कमी और उससे पैदा होने वाली अनेक बीमारियाँ आम तौर पर पायी जाती हैं। बीमारियों के इलाज में भी स्त्रियों की स्थिति दोयम दर्जे की होती है।

देश में करोड़ों की संख्या में कारख़ानों में काम करने वाली स्त्री मज़दूरों को न तो जच्चगी के लिए छुट्टी मिलती है और न ही कोई अन्य सुविधा। काम छूट जाने और आर्थिक तंगी के कारण वे प्रसव से कुछ दिन पहले तक कमरतोड़ काम करती रहती हैं। ऐसे में माँ और बच्चे दोनों का जीवन ख़तरे में पड़ जाता है।

माँ और ममता के बारे में हमारे देश में बहुत बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं, लेकिन देश की करोड़ों माँओं और नन्हें शिशुओं के साथ यह व्यवस्था जो सुलूक करती है, उसके बाद अगर किसी के मन में इस व्यवस्था को आग लगा देने का विचार नहीं पैदा होता है, तो उसे अपने बारे में गम्भीरता से सोचना चाहिए।

– कविता

दिल्ली में बादाम मज़दूरों की हड़ताल की शानदार जीत!

जून महीने में 19 तारीख से हड़ताल पर बैठे बादाम मज़दूरों ने हड़ताल के छठे दिन जीत हासिल की और मालिकों को मुख्य माँगों पर झुकने को मजबूर कर दिया। 24 जून को मालिको ने अन्तत: यूनियन के सदस्यों के साथ बैठक में माँगें मानने का लिखित समझौता किया जिसके बाद इलाके में मज़दूरों ने एक विजय रैली निकालकर अपनी जीत की घोषणा की। यह जीत सिर्फ़ बादाम मज़दूरों की नहीं बल्कि इलाके के उन मज़दूरों की भी है जो इलाक़ाई एकता के आधार पर बादाम मज़दूरों के साथ खड़े थे। इस हड़ताल में पेपर प्लेट मज़दूर, निर्माण मज़दूर, कुकर से लेकर खिलौना व अन्य फ़ैक्ट्रियों के मज़दूर बादाम मज़दूरों के साथ थे।

करावलनगर मज़दूर यूनियन के बैनर तले इलाकाई एकता के आधार पर करावल नगर के मज़दूरों ने यह दूसरी हड़ताल जीती है। इस हड़ताल में यूनियन व बिगुल मज़दूर दस्ता ने इलाके में पर्चे बाँटकर, मीडिया में अपनी बात पहुँचाकर और जनसभा व रैली निकालकर इस हड़ताल के पक्ष में व्यापक जन सहयोग जुटाया। दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों से लेकर इलाके के नागरिक व पत्रकार भी इस संघर्ष में मज़दूरों के साथ खड़े थे। परन्तु इस शानदार जीत की सबसे बड़ी ताकत मज़दूरों की इलाक.ई एकता थी। हड़ताल में यूनियन की ओर से दिये माँगपत्रक की 4 मुख्य माँगों में से मालिकों ने तीन माँगों को मान लिया है:

1. बादाम मज़दूरों को बादाम छँटाई का रेट 1 रुपया से बढ़ाकर 2 रुपये प्रति किलो दिया जाये, साथ ही हर महीने के पहले हफ़्ते में भुगतान व हर साल मज़दूरी में दस फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी।

2. बादाम मज़दूरों के रोज़गार कार्ड पर मालिक हस्ताक्षर के साथ काम दर्ज करेगा।

3. सभी बादाम गोदामों में पीने के साफ़ पानी और शौचालय की सुविधा।

बादाम उद्योग के पंजीकरण और उद्योग से जुड़े अन्य मज़दूरों (मशीन व हाथ से बादाम तोड़ने वाले मज़दूरों) को न्यूनतम वेतन के अनुसार भुगतान की माँग भी माँगपत्रक में शामिल थी जिन्हें मा. लिकों ने मानने से इनकार कर दिया। इन माँगों को लागू कराने के लिए यूनियन कानूनी लड़ाई के साथ ही आन्दोलन का रास्ता अपनायेगी क्योंकि ये माँगें सिर्फ एक हड़ताल में नहीं बल्कि लड़ाइयों के लम्बे दौर के बाद ही जीती जायेंगी।

इस हड़ताल के दौरान बिगुल मज़दूर दस्ता और करावलनगर मज़दूर यूनियन ने जमकर राजनीतिक भण्डाफ़ोड़ का काम भी किया। हालाँकि पुलिस से सीधे टकराव ही मज़दूरों को बुनियादी स्तर पर राजनीतिक कर देता है परन्तु मालिक-पुलिस से लेकर विधायक, न्यायालय, श्रम मंत्रालय और पूँजीवादी मीडिया के गँठजोड़ को पूँजीवादी राज्य व्यवस्था के रूप में देखने और इसे ध्वस्त करने की रा. जनीति मज़दूर इन संघर्षों में राजनी. तिक प्रचार के ज़रिये सीखता है। अपनी माँगों के लिए इलाके के विधायक के घेराव से लेकर इलाकाई आधार पर मज़दूर आबादी व व्यापक जनता तक रैली और पर्चों के माध्यम से संघर्ष में साझेदारी की माँग इस हड़ताल के कुछ महत्वपूर्ण सक. ारात्मक सबक हैं। इस संघर्ष में सबसे आगे रहने वाली महिला मज़दूरों का जीवट सबसे बड़ी सकारात्मक उपलब्धियों में से एक है। इस हड़ताल के कुछ नकारात्मक पहलू भी थे, मसलन बिहार के अलावा उत्तर प्रदेश के कुछ मज़दूरों को छोड़कर उत्तर प्रदेश की बड़ी व उत्तराखंड की लगभग पूरी आबादी हड़ताल में शामिल नहीं थी। लेकिन इस उद्योग के मशीनीकरण के चलते देर-सबेर यह आबादी भी (छँटनी व महँगाई के चलते) यूनियन के साथ खड़ी होगी, बशर्ते अभी से ही यूनियन इस आबादी के बीच सही ढंग से राजनीतिक प्रचार करे।

– बिगुल संवाददाता

मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन

एक सम्भावनासम्पन्न आन्दोलन का बिखराव की ओर जाना...

(पेज 1 से आगे)

संघर्ष की नये सिरे से शुरुआत की थी। मारुति सुज़ुकी देश की नम्बर एक कार कम्पनी है। इसके मज़दूर उन्नत मशीनों पर काम करने वाले मज़दूर हैं। पढ़े-लिखे और नौजवान मज़दूर हैं। नतीजतन, उनके आन्दोलन को लेकर पूरे देश के मज़दूरों के बीच एक उम्मीद रही है। साथ ही, मज़दूरों के बीच काम करने वाले संगठन और कार्यकर्ता भी इस आन्दोलन को आशा की दृष्टि से देखते आये हैं। निश्चित रूप से, इस आन्दोलन में शुरू से ही ज़बर्दस्त सम्भावनाएँ मौजूद थीं। लेकिन ये सम्भावनाएँ अब समाप्त होती दिख रही हैं।

हालिया घटनाक्रम और बिखराव की स्थिति

हमने पिछले अंक में मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व में चल रहे इस आन्दोलन में आये ठहराव का एक विश्लेषण पेश किया था (देखें 'क्यों ठहरावग्रस्त है मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन?', मज़दूर बिगुल, जून, 2013)। अब ठहराव की स्थिति और आगे बढ़कर गिरावट और बिखराव की ओर जा रही है। 18 जुलाई 2012 को मानेसर संयंत्र में हुई हिंसा की घटना और उसके बाद से मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के न्याय के लिए संघर्ष के एक वर्ष पूरे हुए। मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने देश भर के विभिन्न मज़दूर संगठनों और ट्रेड यूनियनों से अपील की थी कि वे इस वर्ष 18 जुलाई को मानेसर में ताऊ देवीलाल पार्क पहुँचें और यूनियन द्वारा आयोजित अनिश्चितकालीन धरने और भूख हड़ताल में शामिल हों। इस धरने की घोषणा के बाद गुड़गाँव प्रशासन ने इस प्रदर्शन के बाबत निषेधाज्ञा जारी कर दी। कुछ दिनों बाद ही मजिस्ट्रेट ने धारा 144 भी लागू कर दी। प्रशासन ने कहा कि अगर मज़दूर चाहें तो गुड़गाँव के लेज़र वैली पार्क में प्रदर्शन कर सकते हैं। ज्ञात हो कि यह पार्क औद्योगिक क्षेत्र से बेहद दूर कुछ रिहायशी अपार्टमेण्टों और शॉपिंग मॉलों के बीच स्थित है। ज़ाहिर है यहाँ प्रदर्शन करने से न तो मारुति सुज़ुकी कम्पनी को कोई खुजली होती और न ही हरियाणा सरकार को। मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व ने घोषणा की कि वे इस निषेधाज्ञा और धारा 144 का उल्लंघन करेंगे और पार्क से रैली निकालते हुए मानेसर के ताऊ देवीलाल पार्क तक जायेंगे। सभी जानते थे कि ऐसा तभी सम्भव है जब 5 से 6 हज़ार लोग इस प्रदर्शन में शामिल हों। यूनियन के नेतृत्व को यह उम्मीद भी थी कि देश भर के और ख़ास तौर पर दिल्ली एनसीआर के मज़दूर संगठनों के शामिल होने से प्रदर्शन में लोगों की तादाद इतनी हो जायेगी। हालाँकि, हमने पिछले अंक में मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन पर प्रकाशित अपने लेख में इस बात की ओर ध्यान दिलाया था कि हर बीतते दिन के साथ एक ग़लत रणनीति और कार्यनीति अपनाने के कारण मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन कमज़ोर होता जा रहा है। कुछ लोगों को हमारा ऐसा लिखना नागवाँर गुज़रा। लेकिन इस 18 जुलाई को यह बात आईने की तरह साफ़ हो गयी है कि हमने जो कुछ कहा था वह शत-प्रतिशत सही था।

इस 18 जुलाई के लिए मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने 'मानेसर चलो' का नारा बुलन्द किया था। उनका आह्वान था कि वह अनिश्चितकालीन धरना और भूख हड़ताल करेगी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। न तो प्रदर्शन मानेसर तक पहुँच पाया और न ही अनिश्चितकालीन धरना और भूख हड़ताल हुई। मज़दूरों और पूरे दिल्ली, एनसीआर और देश के अन्य हिस्सों से जुटे लोगों की संख्या मुश्किल से 300 पहुँच पायी थी। इनमें से मारुति मज़दूरों की संख्या बमुश्किल तमाम 60 थी। जो लोग जुटे थे वे लेज़र वैली पार्क में ही रहे, जहाँ पर मारुति सुज़ुकी के दिवंगत एचआर मैनेजर अवनीश देव की याद में नारे लगे और उनकी तस्वीरें सजायी गयीं। इसके बाद उस पार्क में ही मोमबत्तियाँ जलाकर प्रतिरोध हुआ। स्वयं ही देखा जा सकता है कि यह संघर्ष अब बिखराव की मंज़िल में पहुँच रहा है, हालाँकि जब 7-8 नवम्बर 2012 को इस संघर्ष की शुरुआत हुई थी तब इसमें ज़बर्दस्त सम्भावना मौजूद थी। अभी तक बीच-बीच में कुछ धरना-प्रदर्शन आदि हो रहे हैं तो इसका मुख्य कारण अब बाह्य ट्रेड यूनियनों और मज़दूर संगठनों से मिल रहा समर्थन है। हालाँकि इस समर्थन में भी देशभर से कुल जमा 100-150 लोग ही जुट पाते हैं। जिन माँगों को लेकर मारुति सुज़ुकी का संघर्ष शुरू हुआ था वे माँगें तो अब किनारे हो गयी हैं, और पूरा मारुति सुज़ुकी आन्दोलन ग़लत रणनीति के कारण अलग-अलग समय पर गिरफ़्तार कार्यकर्ताओं और मज़दूरों का रिहाई आन्दोलन बन गया है। जहाँ 7-8 नवम्बर को मारुति सुज़ुकी के मज़दूर कई सौ की संख्या में जुटे थे, वहाँ आज मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के आह्वान पर 60 मज़दूर भी नहीं जुट पाते हैं। कोई अन्धा ही कह सकता है कि यह आन्दोलन आगे जा रहा है, या फिर ख़ुद को ख़ुश रखने पर आमादा कोई व्यक्ति ही इस आन्दोलन की प्रगति की बात कर सकता है। ऐसा नहीं है कि बचे-खुचे मारुति सुज़ुकी मज़दूर घर बैठ जायेंगे। ज़ाहिरा तौर पर वे विभिन्न प्रदर्शनों आदि में आते रहेंगे। हमेशा की तरह मारुति के मज़दूर आन्दोलन का ठेका किसी न किसी संशोधनवादी ट्रेड यूनियन, किसी अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठन या किसी खाप पंचायत या स्थानीय बुर्जुआ नेता को मिलता रहेगा। ताज़ा ख़बर के मुताबिक इस ठेके के लिए तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के बीच प्रतिस्पर्द्धा जारी है। हाल ही में एक्टू ने मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन को एक लाख रुपये की सहायता देकर इस ठेके पर अपना दावा पेश किया है। 18 जुलाई 2013 को जो प्रदर्शन गुड़गाँव के लेज़र वैली पार्क में हुआ है उसके बारे में अखबारों में एक्टू की तरफ़ से यही ख़बर आयी है कि वह प्रदर्शन मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन की तरफ़ से नहीं बल्कि एक्टू की तरफ़ से किया गया है! हमेशा की तरह मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व ने एक नया रहनुमा चुन लिया है, जिसकी पूँछ पकड़कर वह आन्दोलन में कुछ हासिल कर पाने की उम्मीद करती है। लेकिन हमेशा की तरह एक ग़लत योजना के कारण उनकी आशाओं पर पानी ही फिरने वाला है; और यूनियन के नेतृत्व की ग़लत नीति के कारण संघर्षरत मज़दूरों का हौसला और भी पस्त होता जायेगा, जैसा कि अभी तक होता आया है।

बिखराव के कारणों की पड़ताल

ऐसे में यह सवाल लाज़िमी है कि यह आन्दोलन अब पराजय और बिखराव के रास्ते पर क्यों है? इसके कारणों की पड़ताल किये बिना भविष्य में भी गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा के मज़दूर आन्दोलनों को इन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। हमने पिछले अंक में कुछ कारणों की ओर इंगित किया था। अब जबकि आन्दोलन बिखराव के रास्ते पर आगे बढ़ चुका है, तो इन कारणों की और स्पष्टता से पहचान की जा सकती है।

1. पहला कारण, जो कि सबसे महत्वपूर्ण है और जिसकी चर्चा हमने पिछले लेख में भी की थी, वह है मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व द्वारा लगातार एक ग़लत और मूर्खतापूर्ण योजना पर अमल किया जाना। जैसा कि सभी जानते हैं कि मारुति सुज़ुकी का मसला कोई हरियाणा का स्थानीय मसला नहीं है। अपने स्वभाव से ही यह मसला राष्ट्रीय चरित्र का है और जब तक कोई मूर्खतापूर्ण तरीके से इसे ख़ुद ही हरियाणा का मसला न बना दे, तब तक इस पर संघर्ष की सही जगह, ज़मीन और वक़्त इस राष्ट्रीय चरित्र के आधार पर ही तय किया जाना चाहिए। लेकिन एम.एस.डब्ल्यू.यू. (मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन) के नेतृत्व ने पिछले एक वर्ष के अनुभव और कुछ संगठनों द्वारा लगातार सलाह-मशविरा दिये जाने के बावजूद इस सच्चाई को नहीं समझा। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने नवम्बर 2012 में ही यह सुझाव दिया था कि इस संघर्ष की सही ज़मीन गुड़गाँव से आगे दिल्ली तक जाती है और भविष्य में हमें अपने संघर्ष की ज़मीन के तौर पर दिल्ली को चुनना चाहिए। लेकिन एम.एस.डब्ल्यू.यू. का नेतृत्व इस बात को अन्त तक समझने में नाकाम रहा। नतीजतन, संघर्ष को एक अलगाव की स्थिति में कभी रोहतक, कभी जीन्द, कभी कैथल तो कभी फरीदाबाद की ओर धकेला जाता रहा। कई मज़दूरों की यह राय भी थी कि संघर्ष को दिल्ली ले जाया जाय, क्योंकि जब पहली बार दिल्ली में प्रदर्शन हुआ तो उसके अगले दिन ही भूपेन्द्र हूडा के बेटे दीपेन्द्र हूडा ने बातचीत के लिए यूनियन के नेतृत्व को बुलाया था। यह अपने आपमें बताता था कि दिल्ली में मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के प्रदर्शन और अनिश्चितकालीन धरने का क्या असर पड़ सकता है। यही कारण था कि कई मज़दूर इस बात को समझ रहे थे। लेकिन एम.एस.डब्ल्यू.यू. का नेतृत्व इस बात को नहीं समझ रहा था और लगातार संघर्ष को हरियाणा के ही एक शहर से दूसरे शहर में घुमा रहा था। यह सुझाव भी नेतृत्व को दिया गया था कि एकदिनी प्रदर्शनों से कुछ नहीं होगा और अनिश्चितकालीन धरने और भूख हड़ताल पर बैठना पड़ेगा। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के इस सुझाव पर यूनियन ने काफ़ी देर से अमल किया, लेकिन ग़लत जगह पर, यानी कैथल में। मार्च में कैथल में जब अनिश्चितकालीन धरना और भूख हड़ताल शुरू हुई तो हमने इस कदम का स्वागत किया लेकिन साथ ही आगाह किया था कि देर-सबेर हरियाणा सरकार इसका ज़बर्दस्त दमन करेगी और इसकी ख़बर तक देश की जनता तक नहीं पहुँच सकेगी। अगर यही अनिश्चितकालीन धरना और भूख हड़ताल दिल्ली में की जाती तो इससे मीडिया के ज़रिये हरियाणा सरकार, केन्द्र सरकार और साथ ही मारुति सुज़ुकी कम्पनी पर ज़्यादा दबाव पड़ता और इस बात की पूरी सम्भावना थी कि वे एम.एस.डब्ल्यू.यू. को वार्ता के लिए बुलाते। 19 मई को हमने जो कहा था वही हुआ। कैथल में मारुति के मज़दूरों और उनके परिजनों पर बर्बरतापूर्ण लाठी चार्ज हुआ। इसके बाद भी हमने एम.एस.डब्ल्यू.यू. के नेतृत्व को सलाह दी कि अब तो होश में आइये और दिल्ली चलिये! लेकिन तब भी यूनियन नेतृत्व इसी ज़िद पर अड़ा रहा कि वह मानेसर या गुड़गाँव में प्रदर्शन करेगा। हमने तब भी चेताया था कि अब आपकी जितनी ताक़त है, उसमें आप यह संघर्ष केवल सही दाँव-पेच से जीत सकते हैं, अपनी ताक़त के बूते नहीं। 18 जुलाई 2013 को यह बात एक बार फिर से साबित हुई जब यूनियन के देशव्यापी आह्वान पर और संगठनों के तो महज़ 100-150 लोग आये, लेकिन स्वयं मारुति मज़दूर ही केवल 55-60 की संख्या में आये! लेकिन इस प्रदर्शन में भी यूनियन के नेतृत्व के लोगों ने अपने भाषण में कहा कि चाहे जो हो जाये वे मानेसर में ही प्रदर्शन करेंगे और प्रदर्शन की आज्ञा के लिए सुप्रीम कोर्ट तक जायेंगे। यानी कि अब आन्दोलन का प्रमुख मुद्दा प्रशासन से प्रदर्शन की आज्ञा लेना है!! कोई भी समझ सकता है कि यह पूरी योजना किस कदर मूर्खतापूर्ण है। लेकिन यूनियन नेतृत्व इस बात को समझने में नाकाम है।

2. इतने मौकों पर यूनियन नेतृत्व सबसे साफ़ तौर पर दिखने वाली सच्चाई को भी नहीं समझ पा रहा है तो इसका कारण क्या है? यही इस आन्दोलन के असफलता की ओर बढ़ने का दूसरा कारण है। दरअसल, एम.एस.डब्ल्यू.यू. इस आन्दोलन में किसी भी जनवादी कार्यपद्धति का इस्तेमाल नहीं कर रहा है। जिस चीज़ का पालन अभी यूनियन में आन्तरिक तौर पर हो रहा है, उसे हम 'प्रधान जी' संस्कृति कह सकते हैं। इसका एक कारण तो स्वयं मज़दूरों के बीच इस चेतना का अभाव है कि ट्रेड यूनियन के भीतर जनवादी कार्यसंस्कृति होनी चाहिए। लेकिन इसके लिए मुख्य तौर पर दो शक्तियाँ ज़िम्मेदार हैं। एक तो स्वयं एम.एस.

(पेज 13 पर जारी)

उत्तराखण्ड त्रासदी: अंधाधुंध पूँजीवादी विकास का नतीजा

(पेज 1 से आगे)

अंधाधुंध तरीक़े से सड़कें, सुरंगें व बाँध बनाने के लिए पहाड़ियों को बारूद से उड़ाई गईं उसकी वजह से इस पूरे इलाक़े की चट्टानों की अस्थिरता और बढ़ने से भूस्खलन का ख़तरा बढ़ गया। वनों की अंधाधुंध कटाई और अवैध खनन से भी पिछले कुछ बरसों में हिमालय के इस क्षेत्र में भूस्खलन, मृदा क्षरण और बाढ़ की परिघटना में बढ़ोत्तरी देखने में आयी है। यही नहीं इस पूरे इलाक़े में पिछले कुछ वर्षों में हिमालय की नदियों पर जो बाँध बनाये गये या जिन बाँधों की मंजूरी मिल चुकी है उनसे भी बाढ़ की संभावना बढ़ गई है क्योंकि इनमें से ज़्यादातर की मंजूरी पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव की सांगोपांग पड़ताल के बिना ही दे दी गई। साथ ही साथ इन बाँधों में होने वाली सिल्टिंग को भी हटाने की कोई कारगर योजना न होने से आने वाले दिनों में भी भीषण त्रासदियों की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

उत्तराखण्ड की त्रासदी के पीछे एक मुख्य कारण मानसून का समय से काफ़ी पहले और भीषण रूप में आना रहा। मानसून की अनिश्चितता का बढ़ना जलवायु परिवर्तन की व्यापक परिघटना से जोड़ कर देखा जा रहा है। दुनिया भर के वैज्ञानिक और पर्यावरणविद् यह बात बरसों से कहते आये हैं कि पिछले कुछ दशकों में समूचे भूमण्डल में जलवायु परिवर्तन के लक्षण दिख रहे हैं। 'ग्लोबल वार्मिंग' की परिघटना इसी परिवर्तन की एक बानगी है जिसमें पृथ्वी पर कुछ ख़ास गैसों (ग्रीन हाउस गैसों जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड) के अधिकाधिक उत्सर्जन की वजह से वातावरण का औसत तापमान बढ़ रहा है जिसकी परिणति दुनिया के विभिन्न हिस्सों में भारी वर्षा, बाढ़ व सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती बारम्बारता के रूप में देखने को आ रही है। 'ग्रीन हाउस' गैसों का उत्सर्जन मुख्य तौर पर जीवाश्मीय ईंधन (फॉसिल फ्यूएल) के इस्तेमाल में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी से जुड़ा हुआ है जो सीधे तौर पर विश्वव्यापी पूँजीवादी ऑटोमोबाइल उद्योग के सनक भरे विकास की वजह से हुआ है। इसके अतिरिक्त ग्लोबल वार्मिंग का एक अन्य प्रभाव ग्लेशियरों के पिघलने के रूप में सामने आ रहा है जिसकी वजह से बाढ़ की सम्भावना और बढ़ जाती है। केदारनाथ घाटी की आपदा की भीषणता का एक कारण चोराबारी ग्लेशियर का पिघलना भी रहा जो मन्दाकिनी नदी का स्रोत है। इस ग्लेशियर के पिघलने की वजह से केदारनाथ घाटी में जल के बहाव में भारी वृद्धि हुई और भूस्खलन से आने वाली चट्टानों और भारी भरकम पत्थरों के साथ जब यह जल केदारनाथ कस्बे में पहुँचा तो वहाँ लोगों को सम्भलने का मौक़ा भी नहीं मिला और देखते ही देखते पूरे क़स्बे में तबाही मच गई।

उत्तराखण्ड की इस भीषण त्रासदी में जान-माल की अभूतपूर्व क्षति का एक कारण यह भी रहा कि जब यह आपदा घटित हुई उस वक़्त वहाँ अन्य राज्यों से बहुत भारी संख्या में आये तीर्थयात्री मौजूद थे। ग़ौरतलब है कि इतनी बड़ी संख्या में तीर्थयात्रियों का चार धाम यात्रा में आना स्वत: स्फूर्त नहीं है, बल्कि इसके पीछे पूरा पर्यटन उद्योग का ताना बाना काम करता है जिसमें टूर ऑपरेटरर्स से लेकर होटल व्यवसायी और कुकुरमुत्ते की तरह पनपने वाले क़िस्म-क़िस्म के आध्यात्मिक गुरू और बाबा शामिल हैं। जहाँ एक ओर पूँजीवादी समाज में असमानता और अराजकता फैलाकर लोगों को पाप करने और अपराध करने के लिए हमेशा उकसाता रहता है वहीं दूसरी ओर धर्म में मौजूद इन पापों को प्रायश्चित करने और मोक्ष प्राप्ति के तमाम तरीक़ों को सहयोजित कर मुनाफ़ा कमाने के नित नये अवसर भी खोजता रहता है। तीर्थयात्रा ऐसा ही एक तरीक़ा है जिसने देखते ही देखते पिछले कुछ सालों में ही एक संगठित पर्यटन उद्योग का रूप धारण कर लिया है। यहाँ तक कि मज़दूर वर्ग के एक हिस्से में भी यह अन्धविश्वासी सोच पैठ गई है कि तीर्थयात्रा करके उनके जीवन में कुछ सुधार आ जायेगा।

केन्द्र व राज्य सरकार दोनों के प्रतिनिधियों ने इस भीषण त्रासदी के लिए किसी भी प्रकार की ज़िम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया है। यह बात सही है कि इस त्रासदी में बाढ़ के साथ-साथ बहुत बड़ी मात्रा में मलबे के बहने से इसने भीषण रूप अख़्तियार कर लिया। परन्तु यह भी उतना ही सही है कि ऐसी भीषण त्रासदी में भी शासन और प्रशासन की चुस्ती और मुस्तैदी से जान-माल की हानि को कम किया जा सकता था।

केन्द्र सरकार के अन्तर्गत काम करने वाले मौसम विभाग का कहना है कि उसने इस बार समय से पहले मानसून के आने की स्पष्ट चेतावनी दी थी और उसने उत्तराखण्ड सरकार को यह भी जानकारी दी थी कि 16, 17 और 18 जून को वहाँ भारी वर्षा होने की सम्भावना है। परन्तु राज्य सरकार का यह कहना है कि यह चेतावनी ठोस रूप में न होकर बहुत सामान्य रूप में दी गई थी, इसलिए प्रशासन ने कोई क़दम उठाना ज़रूरी नहीं समझा। ज़ाहिर है कि प्रशासनिक हलके में मौसम विभाग की भविष्यवाणी महज़ रस्मअदायगी बनकर रह गयी है। इस पूरे वाक़ये से भारत की पूँजीवादी नौकरशाही का घनघोर जनविरोधी और संवेदनहीन चरित्र सामने आता है।

उत्तराखण्ड त्रासदी के दो महीने पहले ही सीएजी (कम्पट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल) ने अपनी एक रिपोर्ट (परफार्मेंस ऑडिट रिपोर्ट, 23 अप्रैल 2013) में आपदा प्रबन्धन के मामले में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के लचर दृष्टिकोण की आलोचना की थी। रिपोर्ट में यह साफ लिखा है कि 2007 में मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में गठित उत्तराखण्ड आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण ने आज तक राज्य में आपदा प्रबन्धन को लेकर कोई नीति नहीं बनायी और कोई दिशानिर्देश भी नहीं ज़ारी किया। आपदा प्रबन्धन क़ानून 2005 के अनुसार हर राज्य को अपनी आपदा प्रबन्धन योजना बनाने की ज़िम्मेदारी थी। परन्तु उत्तराखण्ड सहित तमाम राज्य सरकारों ने ऐसी कोई योजना नहीं बनायी और न ही विभिन्न प्रकार की आपदाओं की बारम्बारता और गहनता के आँकड़े एकत्र करने की दिशा में कोई प्रयास किया गया। प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकारण (एन डी एम ए) की यह ज़िम्मेदारी है कि वह राज्यों के ऊपर दबाव डालें कि वे आपदा प्रबन्धन को लेकर अपनी-अपनी योजनायें बनायें और दिशानिर्देश ज़ारी करें। परन्तु एन डी एम ए को अपनी इस ज़िम्मेदारी का निर्वहन करने की फ़ुरसत नहीं मिली। ऐसे में यह आश्चर्य की बात नहीं कि आपदा आने के बाद उत्तराखण्ड के मुख्यमन्त्री बगलें झाँकते नज़र आये और राज्य में आपदा प्रबन्धन की देखरेख करने की बजाय दिल्ली में डेरा डाले रहे और देशवासियों से मदद की गुहार लगाते फिरते रहे।

अन्त में यह जोड़ना ज़रूरी है कि उत्तराखण्ड की त्रासदी के बाद जो लोग हर क़िस्म के आधुनिक विकास मसलन पहाड़ों पर सड़कें, सुरंगें, बाँध इत्यादि बनाने का निरपेक्ष विरोध कर रहे हैं वो भी इस क़िस्म की त्रासदी से निज़ात पाने का कोई व्यावहारिक उपाय नहीं बता रहे हैं। मानव सभ्यता के जन्म के साथ ही मनुष्य और प्रकृति के बीच अन्तरविरोधों की शुरुआत हो चुकी थी। यह सही है कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में अन्तरनिहित अराजकता की वजह से इस अन्तरविरोध ने विनाशकारी रूप अख़्तियार कर लिया है। परन्तु इसका समाधान यह नहीं हो सकता कि हम हर क़िस्म की आधुनिकता का त्याग कर मानव सभ्यता की पिछली मंजिलों की ओर वापस मुड़ जायें। इस त्रासदी का समाधान हमें अतीत की बजाय भविष्य की उत्पादन प्रणाली में ढूँढना होगा। ऐसा समाधान समाजवादी उत्पादन प्रणाली ही दे सकती है जिसका अस्तित्व समाज के मुट्ठी भर लोगों की मुनाफ़े की सनक को पूरा करने की बजाय व्यापक मानवता की वास्तविक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हो। केवल ऐसी उत्पादन प्रणाली में ही मनुष्य और प्रकृति के बीच के अन्तरविरोधों को योजनाबद्ध और सौहार्दपूर्ण तरीक़े से हल किया जा सकता है। विकास के मौजूदा पूँजीवादी मॉडल के बरक्स समाजवादी मॉडल में लोग न सिर्फ़ स्थानीय आबादी की ज़रूरतों के हिसाब से मिलजुलकर योजनायें बनायेंगे और उनको लागू करेंगे बल्कि किसी भी आपदा की सूरत में हाथ पर हाथ रखकर टीवी पर त्रासदी का मंजर देखकर चकित और दुखी होने की बजाय आपदा प्रबन्धन में भी सक्रिय भागीदारी करेंगे जिससे तबाही को कम करना भी सम्भव हो सकेगा। लेकिन समाजवादी व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के बाद ही बनायी जा सकती है। इसलिए मानवता ही नहीं बल्कि समूचे भूमण्डल के अस्तित्व को बचाने के लिए ज़रूरी है कि हम पूँजीवादी व्यवस्था को मिट्टी में मिलाने के काम में जी जान से जुट जायें।

यूनान में फासीवाद का उभार

– गौतम

यूरोप का आर्थिक संकट बदस्तूर जारी है। यूनान, इटली, स्पेन, पुर्तगाल और कई पूर्वी यूरोपीय देशों को यह आर्थिक संकट बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है। अभी कुछ ही महीने पहले एक और देश साइप्रस जो यूरोपीय यूनियन का सदस्य है, का दिवाला पिट गया जिसे बचाने के लिए साइप्रस को 10 बिलियन डॉलर का बेल-आउट पैकेज देना पड़ा यद्यपि इसके लिए साइप्रस पर तगड़ी शर्तें लगी हैं जिसके नतीजे वहाँ की आम जनता को भुगतने पड़ेंगे। इसी तरह इटली में ताजा चुनाव के पश्चात किसी भी पार्टी को बहुमत न मिलने के कारण वहाँ की स्थिति गम्भीर बनी हुई है। लेकिन सब से गम्भीर स्थिति यूनान में है। 8 जुलाई को यूरोपीय यूनियन, यूरोपीय बैंक और अन्त.रराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने यूनान को अल्टी.मेटम दिया कि अगर उसे बेल-आउट के जरिए और सहायता हासिल करनी है तो उसे अपने सार्वजनिक खर्चों में कटौती करनी ही होगी और इसके लिए उसे सिर्फ 10 दिन मिलेंगे। यूनान की सत्तारूढ़ न्यू डेमोक्रेसी पार्टी और सामाजिक जनवादी पासोक पार्टी की गठबन्धन सरकार ने तिकड़ी के इस अल्टीमेटम को मानते हुए नया बिल संसद में पास कर दिया है जिसके तहित 4,000 से ऊपर सरकारी कर्मचारियों की छँटनी और 25,000 कर्मचारियों को 'रिज़र्व' (जिसका मकसद भी छँटनी ही है) करार देने का ऐलान कर दिया है। सरकार के इस बिल का विरोध होना लाज़िमी है और विभिन्न यूनियनें और संगठन इसका पहले से ऐलान कर चुके हैं। मगर इस नए बेल-आउट पैकेज से यूनान की स्थिति में कोई सुधार आयेगा, ये बहुत मुश्किल लग रहा है। तीन साल पहले जब पहला बेल-आउट पैकेज दिया गया था तब यूनान का कर्जा उसके सकल घरेलू उत्पाद का 129 प्रतिशत था जो अब बढ़कर 159 प्रतिशत हो चुका है, बेरोज़गारी भी पहले से बढ़ी है। ऊपर से यह भी साफ हो रहा है कि यूनान बेल-आउट पैकेज के रूप में मिले कर्जे को कभी भी चुका नहीं सकेगा जिसके चलते इस कर्जे को माफ करने या न करने के मसले पर फ्रांस, जर्मनी जैसे यूरोपीय यूनियन के बड़े देशों में मतभेद खड़े हो गए हैं।

इस से पहले जून महीने में सरकार ने सरकारी टेलीविजन को बंद कर दिया और और उसके 2,700 के करीब कर्मच.ारियों को नौकरी से हटा दिया जिसका विरोध करते हुए डेमोक्रेटिक लेफ्ट गठबन्धन सरकार से अलग हो गया था, इसके चलते संसद में सरकार की पा.जीशन कमजोर हुई है और 300 सीटों में से 153 सीटों के बहुत मामूली बहुमत से खुद को बचाये हुए है। ऐसे में यह सरकार आम लोगों और विपक्ष का विरोध कब तक झेल पाती है, ये देखने वाली बात होगी। उधर यूनान में एक और बड़ा खतरा, फासीवाद लगातार अपने पैर पसार रहा है । मई, 2012 के पिछले आम चुनाव में "गोल्डन डॉन" नाम की एक नव-नाजी पार्टी संसद में दाखिल हुई और उसके पश्चात इस घोर दक्षिणपंथी राजनीतिक पक्ष ने न सिर्फ अपनी गति.विधियाँ तीखी की हैं, बल्कि इसकी लो.कप्रियता में इज़ाफ़ा भी हुआ। एक सर्वे के मुताबक अब यह पार्टी यूनान की तीसरी सब से बड़ी पार्टी बन चुकी है और अगर अभी चुनाव होते हैं तो इसको 15 प्रतिशत से ज़्यादा वोट मिलने की संभावना है।

पूँजीवादी ढाँचे के भीतर जब संकट आता है तो सरकार डूब रही वित्तीय संस्थानों जैसे बैंकें आदि (जो अपने लालच-मुनाफे के कारण संकट में फंसती हैं) को संकट से उभारने के लिए सरक.ारी खजाने में से (अर्थात आम लोगों से टैक्सों के रूप में बटोरे पैसों से) भारी रकम "बेल-आउट" पैकेज के रूप में देती हैं और फिर सरकारी खर्चे, जन-सेवाओं और कर्मचारियों के वेतन आदि के खर्चे के लिए उन्ही बैंकों से ब्याज पर कर्ज लेती है । खजाना खाली होने के कारण कुछ वक्त के बाद सरकार के पास ब्याज चुकाने के लिए भी धन.राशि नहीं बचती। इस हालात में से निकलने के लिए सरकार जन-सेवाएं जैसे सेहत, शिक्षा आदि के खर्चों पर कटौती करती है, कर्मचारियों की (पर मोटी तनख्वाह लेने वाले नौकरशाहों की नहीं) छँटनी करती है और आम मेहनतकश जनता पर टैक्सों का बोझ बढ़ाती जाती है। नतीजतन, बेरोज़गारी फैलती है, लोगों की खरीद शक्ति कम होती है और वह अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने से भी असमर्थ होते जाते हैं। यही कुछ यूनान में हुआ है। हालात इतने बुरे हो गए हैं कि सरकार के पास अपने कर्मचारियों को वेतन देने और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय देनदारियाँ चुकाने के लिए भी पैसा नहीं रहा है और यूनान दिवालिया होने के कगार तक पहुँच गया है। यूनान यूरोपीय यूनियन का मेम्बर है, इसलिए उसके दिवालिया होने से पूरी यूरोपीय यूनियन की अर्थव्यवस्था ध्वस्त होने का ख़तरा खड़ा हो गया है। इस ख़तरे से निपटने के लिए यूरोपीय यूनियन, यूरोपीय बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने यूनान को बेल-आऊट पैकेज देना तो मान लिया किंतु साथ ही "किफायत की नीतियाँ" लागू करने की शर्त लगा दी। यह "किफायत की नीतियाँ" असल में कुछ नहीं, बस सार्वजनिक सेवाओं पर होने वाले खर्चों पर भारी कटौती, कर्मचारियों और श्रमिकों के वेतन/मजदूरी को कम करना और कर्मचारियों की छँटनी और साथ ही आम लोगों पर टैक्स का बोझ पहले से और अधिक करना है। सरकार बेल-आउट द्वारा हासिल हुई धनराशि को लोगों के हालात बेहतर करने की बजाए अपनी देनदारियाँ चुकाने हित इस्तेमाल करेगी, जिसका अर्थ है कि इस धनराशि से बैंकों के मालिक पूँजीपति और अन्य बड़े पूँजीपति पहले से और अधिक अमीर हो जायेंगे और लोगों के पल्ले पड़ेगी कंगाल-बदहाल असुरक्षित जिंदगी।

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम ने यूनान के आम लोगों के हालात दयनीय बना रखे हैं। 2013 का साल यूनान में आर्थिक मंदी का लगातार छठा साल है और अगले दो-तीन वर्षों तक भी संकट से उभरने के कोई आसार नजर नहीं आते। बेरोज़गारी की दर 24.4 प्रतिशत है जो यूरोप में स्पेन के बाद दूसरे क्रम पर है, और अगर नौजवानों में फैली बेरोज़गारी की दर (जो कि 55 प्रतिशत को भी पर कर चुकी है) देखी जाये तो यूनान स्पेन से भी आगे निकल चुका है। बहुत बड़ी आबादी खाने के लिए सरकार की तरफ से बांटे जा रहे भोजन के पैकटों पर निर्भर है और बहुत से लोगों को उपवास काटने पड़ रहे हैं। आर्थिक तंगियों के मारे लोग अपना गुस्सा और बेचैनी सड़कों पर प्रदर्शन और बड़े-बड़े मार्च करके दिखा रहे हैं और यह सिलसिला कभी अधिक तीव्र और कभी कुछ मंद रूप में, निरंतर जारी है। दूसरी ओर, पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियां एक से बाद एक, आम लोगों की नजरों में अपना विश्वास खो रही हैं। सा.शलिस्ट पार्टी की सरकार गिरने के कारण जून, 2012 में दो बार आम चुनाव हुए। "किफायत की नीतियाँ" लागू करने की पक्षधर सोशलिस्ट पार्टी को लोगों ने नकार दिया पर सत्ता में आई दक्षिण-मध्य पार्टी "न्यू डेमोक्रेसी" भी वही नीतियां लागू कर रही है। इसलिए आम जनता का सरकार से मोह भंग होना निश्चित है। ऐसी स्थिति में जब आर्थिक ढांचा संक.टग्रस्त हो और राजनीतिक तौर पर शून्यता का आलम हो, तो नये राजनीतिक दल उभरते हैं। यह या तो लोगों की पक्षधर ताकतें हो सकती हैं या फिर बुर्जुआ पक्ष की घोर दक्षिण-पंथी फासीवादी ताकतें हो सकती हैं। यूनान की फासीवादी पार्टी "गोल्डन डॉन" का उभार भी इन्ही परस्थितियों में ही हो रहा है।

"गोल्डन डॉन" पार्टी की स्थापना 1993 में इसके मौजूदा नेता निकोस मिशलाईकोस ने की थी। वर्षों तक यह पार्टी यूनान के राजनीतिक रंगमंच के हाशिए पर बनी रही है। इसके मौजूदा नेता के 1967-74 के समय सत्ता में रही फासीवादी फौजी मण्डली के सदस्यों के साथ संबंध रहे हैं। इस फौजी मण्डली के अत्याचारों के कारण आज भी यूनान के लोगों में इस दौर के लिए कड़वी यादों के अम्बार हैं। इन लोगों की मदद से ही निकोस मिशलाईकोस ने 1980 के दशक में एक छोटा सा गुट कायम किया था जो बाद में आकर "गोल्डन डॉन" के रूप में सामने आया। यूनान में फासीवाद का इतिहास इससे भी थोड़ा पुराना है। 1932 में नाजियों के प्रभाव के कारण यूनान में नाजीवादी "नेशनल सोशलिस्ट पार्टी" की स्थापना हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी के यूनान ऊपर कब्जे के सालों के दौरान इस पार्टी ने हिटलर की फौजों के साथ मिलकर अपने देश के लोगों पर असहय ज़ुल्म किये। विश्व युद्ध दौरान यूनान में भी फास.ीवादियों का मुकाबला करने में कम्युनिस्ट आगे रहे और युद्ध खत्म होने पर एक मुख्य राजनीतिक ताकत के तौर पर उभर कर सामने आए। कम्युनिस्टों को सत्ता में आने से रोकने के लिए साम्राज्यवादी अमे.रिका और ब्रिटेन ने फासीवादियों को हर तरह की मदद दी और यूनान के क्रांतिक.ारी संघर्ष को लहू की नदियों में डुबो दिया। यूनान के लोगों के हिस्से आयी नयी ज़ालिम सत्ता और साम्राज्यवादियों की लूट। लम्बे संघर्ष के पश्चात जब 1967 में आम चुनाव का वक्त आया तो एक बार फिर साम्राज्यवादियों की शह पर सत्तापरिवर्तन हो गया और फौजी राज कायम हुआ जिससे 1974 में आकर यूनानी लोगों को मुक्ति मिली। खैर, हम यूनान की वर्तमान स्थिति की तरफ वापस आते हैं।

अपनी स्थापना के पश्चात, गोल्डन डॉन पार्टी यूनान में छोटी-मोटी कारवाईयों के दायरे में सीमित रही और 2009 तक भी इसका लोगों में ज्यादा आधार नहीं था जिससे इसको आम चुनाव में 0.2 प्रतिशत वोटें ही पड़ी। पर जैसे कि कहा जाता है, फासीवाद शासक पूँजीपति वर्ग का ज़ंजीर के साथ बँधा हुआ पालतू कुत्ता होता है और जब तक पूँजीवाद को इसकी ज़रूरत नहीं पड़ती, यह किल्ली के साथ बँधा हुआ थोडा-बहुत भौंकता रहता है पर पूँजीवाद हर कीमत पर इसके स्वास्थ्य का ख्याल रखता है ताकि "मुश्किल समय" में यह काम आ सके। जब यूनान में पूँजीवाद का "मुश्किल समय" शुरू हुआ तो गोल्डन डॉन की गतिविधियां भी तेज हो गई नतीजन 2012 के चुनाव में इसको 7 प्रतिशत वोट मिले और पहली बार इसके प्रतिनिधियों को संसद में जगह मिली। चुनाव के कुछ माह बाद ही हुए एक सर्वे के अनुसार गोल्डन डॉन की लोकप्रियता बढकर 12: तक पहुँच गई है। गोल्डन डॉन पार्टी के नेता सरेआम हिटलर और जर्मनी की नाजी पार्टी का गुणगान करते हैं, इस पार्टी का चिन्ह भी नाजियों के स्वास्तिक चिन्ह के साथ मिलता-जुलता है। किसी भी फासीवादी पार्टी की राजनीति होती है, आम लोगों की मुश्किलों के लिए पूँजीवादी व्यवस्था को जिम्मेदार न ठहरा कर आम जनता के ही एक तबके को बहुसंख्यक लोगों की आर्थिक तंगियों का जिम्मेदार बना कर पेश करना, फिर उस तबके के खिलाफ तीखा और घना, नफरत से भरा प्रचार-प्रोपेगंडा चलाना और उस तबके के सदस्यों को हिंसक कारवाईयों का निशाना बनाना। बिल्कुल यही काम इस समय यूनान में गोल्डन डॉन कर रही है। गोल्डन डॉन की तरफ से यूनान में आकर काम करने वाले प्रवासियों और इनमे से खास तौर पर मुस्लिम प्रवासियों को यूनान के लोगों की मुश्किलों का कारण बना कर पेश किया जा रहा है। गोल्डन डॉन का नारा है – "यूनान सिर्फ यूनानियों का है!" उसके नफरत फैलाने वाले प्रचार-तंत्र की मानें तो यूनान के लोगों को रोज़गार न मिलने का कारण यह है कि यह प्रवासी यूनान के स्थानीय लोगों का रोज़गार छीन लेते हैं जिस कारण यूनान के स्थानीय लोगों को बेरोज़गारी का सामना करना पड़ता रहा है। गोल्डन डॉन की सरगर्मी प्रवासियों के विरुद्ध नफरत फैलाने तक सीमित नहीं है, यह हिंसक कारवाईयाँ भी कर रही है। पिछले साल अगस्त में एक इराकी नौजवान की गोल्डन डॉन के साथ जुड़े लोगों हत्या कर दी। इसी तरह एक अन्य घटना में, एक पाकिस्तानी प्रवासी व्यक्ति के सैलून में आग लगा दी और वहां बैठे यूनानी मूल के ग्राहकों को पीटा। गोल्डन डॉन यह प्रचार लगातार कर रही है कि प्रवासियों की दुकानों से कोई खरीदारी ना की जाये और खरीदारी करने वाले यूनानी मूल के लोगों के साथ गद्दारों जैसा व्यवहार किया जाए। गोल्डन डॉन का कहना है कि प्रवासियों के साथ सम्बंधित किसी भी मसले के लिए प्रशासन या पुलिस के पास जाने के बजाये उस तक पहुँचा जाये। स्थिति यहाँ तक पहुँच चुकी कि पुलिस खुद लोगों को गोल्डन डॉन के दस्तों तक भेजती है। सरकार भी गोल्डन डॉन के इस दावे को बल प्रदान कर रही है। पिछले साल यूनानी सरकार ने 5000 प्रवासियों को पुलिस हिरासत में लिया।

गोल्डन डॉन का दूसरा काम है अन्ध-राष्ट्रवाद का तीक्ष्ण प्रचार। इस वर्ष फरवरी में गोल्डन डॉन ने 1996 में तुर्की से हुई यूनान की फौजी झड़प दौरान मारे गए तीन पायलटों की मृत्यु का दिन एक कौमी दिवस के तौर पर मनाया। इस मकसद के लिए रखी रैली में 30,000 से भी अधिक लोगों ने भाग लिया। इस रैली के समय गोल्डन डॉन के 5000 कार्यकर्ता फौजी वर्दी पहनकर मार्च में शामिल हुए। गोल्डन डॉन का कहना है कि तुर्की का शहर इसतंबोल यूनान का हिस्सा है, और जब उन की सरकार आई तो इसतंबोल को तुर्की से छीन कर "राष्ट्रीय गर्व" बहाल किया जाएगा। इसने "राष्ट्रीय जागरण" कैंपों का आयोजन करने की शृंखला शुरू की है जिस के अंतर्गत प्राइमरी स्कूलों के बच्चों से लेकर युवकों के अलग-अलग समूहों को अपने जहरीले प्रचार के द्वारा फासीवादी रा.जनीति को बढ़ावा दे रही है। गोल्डन डॉन आम लोगों में अपनी साख बनाने के लिए लोगों में खुराक का पैकेट बाँट रही है, और इस तरह के ही अन्य "जन-सेवा" के काम कर रही है। पर गोल्डन डॉन की "जन-सेवा" की सुविधा लेने के लिए यूनानी होने का लाइसेंस होना अनिवार्य है और अकसर गोल्डन डॉन इस तरह संपर्क में आए लोगों को गोल्डन डॉन पार्टी में सम्मिलित होने का लिए दबाव भी डालती है। और तो और, गोल्डन डॉन ऐसे ब्लडबैंक स्थापत कर रही है जिनके ऊपर लिखा होता है 'सिर्फ यूनानी खून' और जो सिर्फ शुद्ध यूनानी लोगों के लिए खूनदान का इंतजाम करते हैं। लोगों में सनसनी फैलाने वाले "ऐक्शन" करने भी प्रत्येक फासीवादी पार्टी का विशिष्ट लक्षण होता है, फिर गोल्डन डॉन पीछे कैसे रह सकती है। कुछ समय पूर्व, इसके एक संसदीय सदस्य ने टीवी प्रोग्राम के दौरान सोश.लिस्ट पार्टी की महिला नेता को थप्पड़ मार दिया, हैरानी की बात यह थी कि प्रबंधकों ने गोल्डन डॉन के इस लीडर को वहाँ से जाने दिया और सरकार की भी ओर से कोई कार्रवाई नहीं हुई।

आर्थिक संकट को भी बाकी फास.ीवादी पार्टियों के माफिक, गोल्डन डॉन पिछली और मौजूदा सरकारों में सम्मिलित पार्टियाँ और नेताओं की गलतियाँ और भ्रष्टाचार का नतीजा बताती है जबकि रा.जनीतिक अर्थशास्त्र हमें साफ-साफ बताती है कि आर्थिक संकट पूँजीवादी प्रबंध की आंतरिक गति का नतीजा होते हैं और इस ढाँचे के अन्दर संकट का चक्रीय क्रम जारी रहता है चाहे सरकार

(पेज 6 पर जारी)

कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है (बीसवीं किश्त)

कश्मीर की जनता के साथ भारतीय राज्य की दग़ाबाज़ी की दास्तान

उत्तर-पूर्वी राज्यों में रहने वाली विभिन्न राष्ट्रीयताओं के साथ भारतीय राज्य के ऐतिहासिक विश्वासघात की विस्तृत चर्चा हम इस धारावाहिक लेख की पिछली किस्त में कर चुके हैं। उत्तर-पूर्व के समान ही जम्मू एवं कश्मीर की जनता के साथ भारतीय राज्य अपने जन्म से ही छल और कपट करता आया है जिसका दुष्परिणाम वहाँ की जनता को आज तक झेलना पड़ रहा है। भारत का खाता-पीता मध्य वर्ग जब राष्ट्रभक्ति की भावना से ओतप्रोत होकर कश्मीर को भारत का ताज़ कहता है तो उसे यह आभास भी नहीं होता कि यह ताज़ कश्मीरियों की कई पीढ़ियों की भावनाओं और आकांक्षाओं को बेरहमी से कुचल कर बना है। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि कश्मीर में आतंकवाद की हरकतों को बढ़ावा देने में पाकिस्तान का भी हाथ है परन्तु यह सच्चाई आमतौर पर दृष्टि ओझल कर दी जाती है कि कश्मीर में आतंकवाद के पनपने की मुख्य वजह भारतीय राज्य की वायदाख़िलाफ़ी और कश्मीरी जनता के न्यायोचित संघर्षों के बर्बर दमन और उससे बढ़ते असंतोष एवं अलगाव की भावना रही है। वर्ष 1990 से ही जम्मू एवं कश्मीर में सैन्य बल विशेष सुरक्षा अधिनियम (ए एफ एस पी ए) लागू है और समूची कश्मीर घाटी सैन्य छावनी में तब्दील है। कश्मीर की मौजूदा नौजवान पीढ़ी बूटों की आवाज़ों के बीच और बन्दूकों के साये में पली-बढ़ी है। कश्मीर का पिछले दो दशकों का इतिहास नृशंस हत्याओं, बलात्कारों, अपहरणों और मानसिक यातनाओं का इतिहास रहा है। परन्तु यह समस्या पिछले दो दशकों में ही नहीं उठ खड़ी हुई है, बल्कि भारतीय राज्यसत्ता द्वारा कश्मीरी जनता के साथ की गई वायदाख़िलाफ़ी और दमन के लम्बे इतिहास की तार्किक परिणति के रूप में हमारे सामने है। भारतीय लोकतन्त्र की सदाशयता का आवरण उठाने के लिए भारतीय राज्य की इस ऐतिहासिक वायदाख़िलाफ़ी का कच्चा चिट्ठा खोलना बेहद ज़रूरी है।

औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश राज्य के मातहत तमाम रियासतों में कश्मीर भी एक था। परन्तु कश्मीर की स्थिति इस मामले में बाकी रियासतों से अलग थी कि वहाँ की आबादी का बहुलांश मुस्लिम था, जबकि वहाँ का राजा हरी सिंह हिन्दू था। अन्य राजाओं की तरह हरी सिंह भी निरंकुश और जनविरोधी था और जनता के बीच उसकी कोई लोकप्रियता नहीं थी। जनता के बीच नेशनल कांफ्रेन्स के तत्कालीन नेता शेख अब्दुल्ला खासे लोकप्रिय थे। शेख अब्दुल्ला का दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष था और यही वजह थी कि विभाजन के समय वह न तो कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करने के पक्षधर थे और न ही इस्लाम पर आधारित राज्य बनाने में। लेकिन साथ ही साथ वह भारत में अन्य राज्यों की भाँति शामिल होने को लेकर भी सशंकित थे। समय और परिस्थितियों के अनुसार उन्होंने भी अपनी अवस्थिति को कई बार बदला। शुरुआत में तो वो कश्मीर को एक स्वतन्त्र संघ, पूर्व के स्विट्ज़रलैण्ड के रूप में देखना चाहते थे। नेशनल कांफ्रेन्स ने सत्ता हस्तांतरण के लिए आये ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के सम्मुख भी एक ज्ञापन दिया था जिसमें उसने यह माँग रखी थी कि जम्मू कश्मीर का शासन लोगों के हाथ में होना चाहिए। इस ज्ञापन में कुख्यात अमृतसर सन्धि पर भी सवाल उठाये गये थे जिसमें हरी सिंह के पूर्वज गुलाब सिंह ने मात्र 75 लाख रुपयों में अंग्रेज़ों के हवाले कर दिया था। शेख अब्दुल्ला के गरम तेवरों को देखते हुए हरी सिंह ने उनको जेल में डाल दिया।

हरी सिंह भी विभाजन की सूरत में भारत या पाकिस्तान किसी भी देश में कश्मीर को शामिल नहीं करना चाहता था। वह एक स्वतन्त्र राज्य का महाराजा बनने का ख़्वाब देख रहा था। परन्तु पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित कबायली हमले की वजह से उसके ख़्वाब मिट्टी में मिल गये। इस हमले का सामना करने में अपनी सेना को अक्षम देख हरी सिंह को मज़बूरी में भारतीय सेना से मदद की गुहार लगानी पड़ी। मौके का भरपूर फ़ायदा उठाते हुए भारतीय राज्य ने 26 अक्टूबर 1947 को मदद के बदले में हरी सिंह से विलय के दस्तावेज़ (इन्स्ट्रूमेन्ट ऑफ एक्सेशन) पर दस्तख़त करा लिये। इस दस्तावेज़ में जम्मू एवं कश्मीर के भारत में विलय की बात कही गयी थी, परन्तु उल्लेखनीय है कि इसमें मात्र तीन विषयों यानी रक्षा, विदेश नीति और संचार के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों पर जम्मू एवं कश्मीर राज्य की स्वायत्तता का प्रावधान था। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि विलय के दस्तावेज़ में यह स्पष्ट प्रावधान था कि जम्मू एवं कश्मीर का भारत में विलय आरज़ी था तथा अन्तिम फैसला वहाँ की जनता की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर निर्भर करेगा। उस वक़्त भारत सरकार ने वायदा किया था कि यह विलय तभी पूर्ण माना जायेगा जब राज्य में कानून और व्यवस्था सामान्य होगी और जम्मू एवं कश्मीर की जनता इसके पक्ष में होगी। उसके बाद अनेक अवसरों पर नेहरू ने यह वायदा दुहराया था। पाकिस्तान समर्थित कबायली हमले के विरोध में भारत सरकार द्वारा संयुक्त राष्ट्र को भेजी शिकायत में भी यह लिखा था कि ''राज्य (जम्मू एवं कश्मीर) में सामान्य स्थिति बहाल होने के बाद राज्य के लोग स्वतन्त्र रूप से अपने भविष्य का फैसला करेंगे और यह फैसला जनमतसंग्रह के सर्वमान्य तरीक़े से होगा।''

तमाम आश्वासनों के बावजूद एक बार जम्मू एवं कश्मीर का भारत में विलय होने के बाद वहाँ की जनता के आत्मनिर्णय का अधिकार आज तक उन्हें नहीं मिल पाया है जो कि इस समस्या की जड़ है। विलय के दस्तावेज़ को संवैधानिक जामा पहनाने के मक़सद से संविधान में अनु. 370 डाला गया जो जम्मू एवं कश्मीर को विशेष दर्जा देता है। परन्तु ग़ौर करने वाली बात है कि अनु. 370 में यह कहीं नहीं लिखा है कि जम्मू एवं कश्मीर का भारत में विलय आरज़ी है और इस विलय पर अन्तिम फैसला राज्य की जनता करेगी। यानी अनु. 370 स्वयं विलय के दस्तावेज़ की मूल भावना और जम्मू एवं कश्मीर की जनता की आकांक्षाओं के ख़िलाफ़ जाता है। आरम्भ में इस अनु. में जम्मू एवं कश्मीर को स्वायत्त राज्य का दर्ज़ा देने वाले अनेक प्रावधान थे, मिसाल के तौर पर वहाँ के मुख्यमंत्री को सदर-ए-रियासत (प्रधानमंत्री) कहा जायेगा, वहाँ की विधायिका को संसद कहा जायेगा, वह राज्य भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से मुक्त होगा आदि। परन्तु समय बीतने के साथ भारत सरकार ने संवैधानिक संशोधन के ज़रिये अनु. 370 में दी गई स्वायत्तता का अधिकांश हिस्सा जम्मू एवं कश्मीर की जनता से छीन लिया।

संविधान लागू होने के समय से ही भारत की हिन्दू साम्प्रदायिक ताकतें जम्मू एवं कश्मीर की रही सही स्वायत्तता का विरोध करती आयी हैं और वे शुरुआत से ही जनता की मर्ज़ी के बग़ैर ही इस राज्य को जबरन भारत में मिला लेने की पक्षधर रही हैं। संविधान लागू होने के तुरन्त बाद 1950 के दशक की शुरुआत में भारतीय जनसंघ (भाजपा का पूर्वज संगठन) और जम्मू प्रजा परिषद नामक साम्प्रदायिक संगठन ने अनु. 370 हटाने और जम्मू एवं कश्मीर को किसी भी प्रकार का विशेष दर्ज़ा देने के ख़िलाफ़ आन्दोलन छेड़ दिया। नेहरू सरकार ने भी इन साम्प्रदायिक ताकतों से सख़्ती से निपटने की बजाय उनके प्रति नरम रुख़ अख़्तियार किया। जब शेख अब्दुल्ला को यकीन हो चला कि नेहरू भी साम्प्रदायिक ताकतों के आगे घुटने टेक रहे हैं तो उन्होंने खुले आम घोषणा कर दी कि कश्मीर भारत से आज़ाद होना चाहिए। नतीजतन वे गिरफ़्तार कर लिए गये। उनकी चुनी हुई सरकार बर्ख़ास्त कर दी गई और जम्मू एवं कश्मीर में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। कुछ समय बाद वहाँ गुलाम बख़्शी मुहम्मद शेख को मुख्यमंत्री बनवाया गया जो जम्मू एवं कश्मीर में भारतीय राज्य की कठपुतली से अधिक कुछ भी न था। जेल में रहने के दौरान शेख अब्दुल्ला थोड़ा नरम हुए। कुछ समय बाद उन्हें जेल से रिहा भी किया गया। परन्तु जनमत संग्रह को लेकर उनकी सापेक्षत: नरम अवस्थिति भी अब नेहरू को स्वीकार्य न थी। अत: उन्हें फिर से गिरफ़्तार कर लिया गया। नेहरू की मृत्यु के बाद शेख अब्दुल्ला जेल से रिहा हुए, परन्तु तब तक वे समझौतापरस्त हो चुके थे।

1980 के दशक में कश्मीर की घाटी हिंसा की लपटों में झुलस उठी। 1987 में राज्य के चुनावों में भारी धाँधली के बाद लोगों का असंतोष और बढ़ गया। यही वह माहौल था जब कश्मीर के युवाओं ने हिंसा की राह पकड़ी। निश्चित रूप से इस आग को भड़काने में पाकिस्तान की भी अपनी भूमिका रही थी और हिंसा का रास्ता चुनने वालों में तमाम ऐसे भी थे जो कश्मीर का विलय पाकिस्तान में करना चाहते थे। परन्तु उनमें से अधिकांश ऐसे थे जो आज़ाद कश्मीर की बात करते थे यानी ऐसा कश्मीर जो भारत और पाकिस्तान दोनों से आज़ाद हो। जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट ऐसा ही एक संगठन था। भारतीय सेना ने सभी किस्म के संगठनों को आतंकवादी करार कर उनका बर्बर दमन करने की ठानी। राज्य में सैन्य बल विशेष अधिकार अधिनियम लगा दिया गया। देखते ही देखते समूची कश्मीर घाटी सैन्य छावनी में तब्दील हो गई। यही नहीं भारतीय सेना ने मानवाधिकारों के उल्लंघन के पुराने कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये। 1990 के पूर्वार्द्ध तक कश्मीर में नृशंस हत्यायें, बलात्कार, अपहरण, यातनायें आम बात हो गयीं। यह तथ्य कई मानवाधिकार संगठनों की रिपोर्टों में भी सामने आया है।

हालाँकि कश्मीरी समाज परम्परागत रूप से धार्मिक कट्टरपन्थ से मुक्त रहा है, परन्तु 1980 के दशक में पैदा हुई परिस्थितियों ने वहाँ इस्लामिक कट्टरपंथियों को अपना आधार फैलाने के लिए ज़मीन तैयार की। इसी की परिणति घाटी के अल्पसंख्यक कश्मीरी पंडितों के नरसंहार और घाटी से उनके पलायन के रूप में हुई। आज भी वहाँ की जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति देने में समर्थ रा. जनीतिक शक्ति के अभाव में तहरीक़-ए-हुर्रियत जैसे संगठन कट्टरपंथी इस्लाम की जड़ें मज़बूत कर रहे हैं।

हालाँकि 1990 के दशक के अन्त तक भारतीय सेना ने पाकिस्तान समर्थित आतंकवादियों सहित सभी क़िस्म के चरमपंथियों को 'न्यूट्रलाइज़' कर दिया था, लेकिन वर्ष 2009 से कश्मीरी जनता के प्रतिरोध ने एक नई दिशा में क़दम आगे बढ़ाये जिसे इन्तिफ़ादा (जनविद्रोह) कहा जा रहा है। इस नये चरण में भारतीय सेना का सामना ए के 47 या हैंड ग्रेनेड लिए दुर्दान्त आतंकवादियों से नहीं बल्कि हाथों में गिट्टी व पत्थर आम छात्रों और युवाओं से हो रहा है। 2009 में अमरनाथ यात्रा विवाद, उसी साल शोपियाँ में सशस्त्र बलों द्वारा दो महिलाओं के बलात्कार और हत्या, माछिल फ़र्ज़ी मुठभेड़ में कश्मीरी युवकों की हत्या और जुलाई 2010 में तुफ़ैल मट्टू नामक छात्र की सेना की गोलीबारी में मौत के बाद जनता का गुस्सा इसी नये प्रकार के प्रतिरोध के रूप में सड़कों पर दिखायी दिया जिसका सामना करने में भारतीय सेना को दाँतों तले चने चबाने पड़े। हाल ही में अफ़ज़ल गुरू को फाँसी दिये जाने के बाद कश्मीर के हालात एक फिर तनावपूर्ण हो गये थे। कई दिनों ते कर्फ़्यू लगाने के बाद ही हालात को काबू में किया जा सका।

कश्मीर के इस संक्षिप्त इतिहास से स्पष्ट है कि कश्मीर समस्या के लिए मुख्य रूप से भारतीय राज्य की वायदाख़िलाफ़ी और उसके द्वारा कश्मीरी जनता पर किया गया बर्बर दमन है। इस समस्या के समाधान के लिए कश्मीरी जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार को केन्द्र में रखना होगा। परन्तु भारतीय पूँजीवादी राज्य से ऐसी उम्मीद पालना ख़ामख़्याली है। ऐसा वायदा तो सिर्फ़ एक समाजवादी राज्य ही निभा सकता है।

(अगले अंक में जारी)

समाजवाद और धर्म

– लेनिन

वर्तमान समाज पूर्ण रूप से जनसंख्या की एक अत्यंत नगण्य अल्पसंख्यक द्वारा, भूस्वामियों और पूँजीपतियों द्वारा, मज़दूर वर्ग के व्यापक अवाम के शोषण पर आधारित है। यह एक गुलाम समाज है, क्योंकि "स्वतंत्र" मज़दूर जो जीवन भर पूँजीपजियों के लिए काम करते हैं, जीवन-यापन के केवल ऐसे साधनों के "अधिकारी" हैं जो मुनाफ़ा पैदा करने वाले गुलामों को जीवित रखने के लिए, पूँजीवादी गुलामी को सुरक्षित और क़ायम रखने के लिए बहुत ज़रूरी हैं।

मज़दूरों का आर्थिक उत्पीड़न अनिवार्यत: हर प्रकार के राजनीतिक उत्पीड़न और सामाजिक अपमान को जन्म देता है तथा आम जनता के आत्मिक और नैतिक जीवन को निम्न श्रेणी का और अन्धकारपूर्ण बनाना आवश्यक बना देता है। मज़दूर अपनी आर्थिक मुक्ति के संघर्ष के लिए न्यूनाधिक राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन जब तक पूँजी की सत्ता का उन्मूलन नहीं कर दिया जाता तब तक स्वतंत्रता की कोई भी मात्रा उन्हें दैन्य, बेकारी और उत्पीड़न से मुक्त नहीं कर सकती। धर्म बौद्धिक शोषण का एक रूप है जो हर जगह अवाम पर, जो दूसरों के लिए निरन्तर काम करने, अभाव और एकांतिकता से पहले से ही संत्रस्त रहते हैं, और भी बड़ा बोझ डाल देता है। शोषकों के विरुद्ध संघर्ष में शोषित वर्गों की निष्क्रियता मृत्यु के बाद अधिक सुखद जीवन में उनके विश्वास को अनिवार्य रूप से उसी प्रकार बल पहुँचाती है जिस प्रकार प्रकृति से संघर्ष में असभ्य जातियों की लाचारी देव, दानव, चमत्कार और ऐसी ही अन्य चीजों में विश्वास को जन्म देती है। जो लोग जीवन भर मशक्कत करते और अभावों में जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें धर्म इहलौकिक जीवन में विनम्र होने और धैर्य रखने की तथा परलोक सुख की आशा से सान्त्वना प्राप्त करने की शिक्षा देता है। लेकिन जो लोग दूसरों के श्रम पर जीवित रहते हैं उन्हें धर्म इहजीवन में दयालुता का व्यवहार करने की शिक्षा देता है, इस प्रकार उन्हें शोषक के रूप में अपने संपूर्ण अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करने का एक सस्ता नुस्ख़ा बता देता है और स्वर्ग में सुख का टिकट सस्ते दामों दे देता है। धर्म जनता के लिए अफीम है। धर्म एक प्रकार की आत्मिक शराब है जिसमें पूँजी के गुलाम अपनी मानव प्रतिमा को, अपने थोड़े बहुत मानवोचित जीवन की माँग को, डुबा देते हैं।

लेकिन वह गुलाम जो अपनी गुलामी के प्रति सचेत हो चुका है और अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष में उठ खड़ा हुआ है, उसकी गुलामी आधी उसी समय समाप्त हो चुकी होती है। आधुनिक वर्ग चेतन मजदूर, जो बड़े पैमाने के कारखाना-उद्योग द्वारा शिक्षित और शहरी जीवन के द्वारा प्रबुद्ध हो जाता है, नफरत के साथ धार्मिक पूर्वाग्रहों को त्याग देता है और स्वर्ग की चिन्ता पादरियों और पूँजीवादी धर्मांधों के लिए छोड़ कर अपने लिए इस धरती पर ही एक बेहतर जीवन प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। आज का सर्वहारा समाजवाद का पक्ष ग्रहण करता है जो धर्म के कोहरे के खिलाफ संघर्ष में विज्ञान का सहारा लेता है और मज़दूरों को इसी धरती पर बेहतर जीवन के लिए वर्तमान में संघर्ष के लिए एकजुट कर उन्हें मृत्यु के बाद के जीवन के विश्वास से मुक्ति दिलाता है।

धर्म को एक व्यक्तिगत मामला घोषित कर दिया जाना चाहिए। समाजवादी अक्सर धर्म के प्रति अपने दृष्टिकोण को इन्हीं शब्दों में व्यक्त करते हैं। लेकिन किसी भी प्रकार की ग़लतफ़हमी न हो, इसलिए इन शब्दों के अर्थ की बिल्कुल ठीक व्याख्या होनी चाहिए। हम माँग करते हैं कि जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है, धर्म को व्यक्तिगत मामला मानना चाहिए। लेकिन जहाँ तक हमारी पार्टी का सवाल है, हम किसी भी प्रकार धर्म को व्यक्तिगत मामला नहीं मानते। धर्म से राज्य का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए और धार्मिक सोसायटियों का सरकार की सत्ता से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को यह पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह जिसे चाहे उस धर्म को माने, या चाहे तो कोई भी धर्म न माने, अर्थात नास्तिक हो, जो नियमत: हर समाजवादी समाज होता है। नागरिकों में धार्मिक विश्वास के आधार पर भेदभाव करना पूर्णत: असहनीय है। आधिकारिक काग़ज़ात में किसी नागरिक के धर्म का उल्लेख भी, निस्सन्देह, समाप्त कर दिया जाना चाहिए। स्थापित चर्च को न तो कोई सहायता मिलनी चाहिए और न पादरियों को अथवा धार्मिक सोसायटियों को राज्य की ओर से किसी प्रकार की रियायत देनी चाहिए। इन्हें सम-विचार वाले नागरिकों की

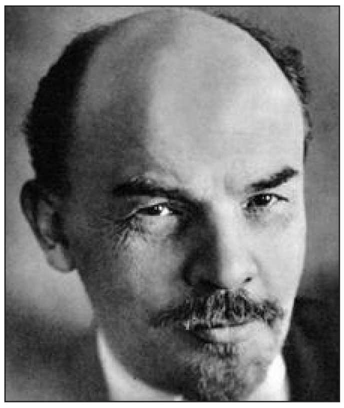

पूर्ण स्वतन्त्र संस्थाएँ बन जाना चाहिए, ऐसी संस्थाएँ जो राज्य से पूरी तरह स्वतंत्र हों। इन माँगों को पूरा किये जाने से वह शर्मनाक और अभिशप्त अतीत समाप्त हो सकता है जब चर्च राज्य की सामन्ती निर्भरता पर, और रूसी नागरिक स्थापित चर्च की सामन्ती निर्भरता पर जीवित था, जब मध्यकालीन, धर्म-न्यायालयीय क़ानून (जो आज तक हमारी दंडविधि संहिताओं और क़ानूनी किताबों में बने हुए हैं) अस्तित्व में थे और लागू किये जाते थे, जो आस्था अथवा अनास्था के आधार पर मनुष्यों को दण्डित करते, मनुष्य की अन्तरात्मा का हनन किया करते थे, और आरामदेह सरकारी नौकरियों तथा सरकार द्वारा प्राप्त आमदनियों को स्थापित चर्च के इस या उस धर्म विधान से सम्बद्ध किया करते थे। समाजवादी सर्वहारा आधुनिक राज्य और आधुनिक चर्च से जिस चीज़ की माँग करता है, वह है–राज्य से चर्च का पूर्ण पृथक्करण।

रूसी क्रांति को यह माँग राजनीतिक स्वतन्त्रता के एक आवश्यक घटक के रूप में पूरी करनी चाहिए। इस मामले में रूसी क्रान्ति के समक्ष एक विशेष रूप से अनुकूल स्थिति है, क्योंकि पुलिस-शासित सामन्ती एकतन्त्र की घृणित नौकरशाही से पादरियों में भी असन्तोष, अशान्ति और घृणा उत्पन्न हो गयी है। रूसी ऑर्थोडाक्स चर्च के पादरी कितने भी अधम और अज्ञानी क्यों न हों, रूस में पुरानी, मध्यकालीन व्यवस्था के पतन के वज्रपात से वे भी जागृत हो गये हैं, वे भी स्वतन्त्रता की माँग में शामिल हो रहे हैं। नौकरशाही व्यवहार और अफ़सरवाद के, पुलिस के लिए जासूसी करने के खिलाफ़– जो "प्रभु के सेवकों" पर लाद दी गयी है – विरोध प्रकट कर रहे हैं। हम समाजवादियों को चाहिए कि इस आन्दोलन को अपना समर्थन दें। हमें पुरोहित वर्ग के ईमानदार सदस्यों की माँगों को उनकी परिपूर्णता तक पहुँचाना चाहिए और स्वतन्त्रता के बारे में उनकी प्रतिज्ञाओं के प्रति उन्हें दृढ़ निश्चयी बनाते हुए यह माँग करनी चाहिए कि वे धर्म और पुलिस के बीच विद्यमान सारे सम्बन्धों को दृढ़तापूर्वक समाप्त कर दें। या तो तुम सच्चे हो, और इस हालत में तुम्हें चर्च और राज्य तथा स्कूल और चर्च के पूर्ण पृथक्करण का, धर्म के पूर्ण रूप से और सर्वथा व्यक्तिगत मामला घोषित किये जाने का पक्ष ग्रहण करना चाहिए। या फिर तुम स्वतन्त्रता के लिए इन सुसंगत माँगों को स्वीकार नहीं करते, और इस हालत में तुम स्पष्टत: अभी तक आरामदेह सरकारी नौकरियों और सरकार से प्राप्त आमदनियों से चिपके हुए हो। इस हालत में तुम स्पष्टत: अपने शस्त्रों की आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास नहीं करते, और राज्य की घूस प्राप्त करते रहना चाहते हो। ऐसी हालत में समस्त रूस के वर्ग चेतन मज़दूर तुम्हारे खिलाफ़ निर्मम युद्ध की घोषणा करते हैं।

जहाँ तक समाजवादी सर्वहारा की पार्टी का प्रश्न है, धर्म एक व्यक्तिगत मामला नहीं है। हमारी पार्टी मज़दूर वर्ग की मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले अग्रणी योद्धाओं की संस्था है। ऐसी संस्था धार्मिक विश्वासों के रूप में वर्ग चेतना के अभाव, अज्ञान अथवा रूढ़िवाद के प्रति न तो तटस्थ रह सकती है, न उसे रहना चाहिए। हम चर्च के पूर्ण विघटन की मांग करते हैं ताकि धार्मिक कोहरे के खिलाफ़ हम शुद्ध सैद्धान्तिक और वैचारिक अस्त्रों से, अपने समाचारपत्रों और भाषणों के साधनों से संघर्ष कर सकें। लेकिन हमने अपनी संस्था, रूसी सामाजिक जनवादी मज़दूर पार्टी की स्थापना ठीक ऐसे ही संघर्ष के लिए, मज़दूरों के हर प्रकार के धार्मिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष के लिए की है। और हमारे लिए वैचारिक संघर्ष केवल एक व्यक्तिगत मामला नहीं है, सारी पार्टी का, समस्त सर्वहारा का, मामला है।

यदि बात ऐसी ही है, तो हम अपने कार्यक्रम में यह घोषणा क्यों नहीं करते कि हम अनीश्वरवादी हैं? हम अपनी पार्टी में ईसाइयों अथवा ईश्वर में आस्था रखने वाले अन्य धर्मावलम्बियों के शामिल होने पर क्यों नहीं रोक लगा देते?

इस प्रश्न का उत्तर ही उन अति महत्वपूर्ण अन्तरों को स्पष्ट करेगा जो बुर्जुआ डेमोक्रेटों और सोशल डेमोक्रेटों द्वारा धर्म का प्रश्न उठाने के तरीक़ों में विद्यमान हैं।

हमारा कार्यक्रम पूर्णत: वैज्ञानिक, और इसके अतिरिक्त भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण पर आधारित है। इसलिए हमारे कार्यक्रम की व्याख्या में धार्मिक कुहासे के सच्चे ऐतिहासिक और आर्थिक स्रोतों की व्याख्या भी आवश्यक रूप से शामिल है। हमारे प्रचार कार्य में आवश्यक रूप से अनीश्वरवाद का प्रचार भी शामिल होना चाहिए; उपयुक्त वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन भी, जिस पर एकतन्त्रीय सामन्ती शासन ने अब तक कठोर प्रतिबन्ध लगा रखा था और जिसे प्रकाशित करने पर दण्ड दिया जाता था, अब हमारी पार्टी के कार्य का एक क्षेत्र बन जाना चाहिए। अब हमें सम्भवत: एंगेल्स की उस सलाह का अनुसरण करना होगा जो उन्होंने एक बार जर्मन समाजवादियों को दी थी–अर्थात हमें फ्रांस के अठारहवीं शताब्दी के प्रबोधकों और अनीश्वरवादियों। के साहित्य का अनुवाद करना और उसका व्यापक प्रचार करना चाहिए।

लेकिन हमें किसी भी हालत में धार्मिक प्रश्न को अरूप, आदर्शवादी ढंग से, वर्ग संघर्ष से असम्बद्ध एक "बौद्धिक" प्रश्न के रूप में उठाने की ग़लती का शिकार नहीं बनना चाहिए, जैसा कि बुर्जुआ वर्ग के बीच उग्रवादी जनवादी कभी-कभी किया करते हैं। यह सोचना मूर्खता होगी कि मज़दूर अवाम के सीमाहीन शोषण और संस्कारहीनता पर आधारित समाज में धार्मिक पूर्वाग्रहों को केवल प्रचारात्मक साधनों से ही समाप्त किया जा सकता है। इस बात को भुला देना कि मानव जाति पर लदा धर्म का जुवा समाज के अन्तर्गत आर्थिक जुवे का ही प्रतिबिम्ब और परिणाम है, बुर्जुआ संकीर्णता ही होगी। सर्वहारा यदि पूँजीवाद की काली शक्तियों के विरुद्ध स्वयं अपने संघर्ष से प्रबुद्ध नहीं होगा तो पुस्तिकाओं और शिक्षाओं की कोई भी मात्रा उन्हें प्रबुद्ध नहीं बना सकती। हमारी दृष्टि में, धरती पर स्वर्ग बनाने के लिए उत्पीड़ित वर्ग के इस वास्तविक क्रान्तिकारी संघर्ष में एकता परलोक के स्वर्ग के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण की एकता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

यही कारण है कि हम अपने कार्यक्रम में अपनी नास्तिकता को न

(पेज 13 पर जारी)

मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलनः एक सम्भावनासम्पन्न आन्दोलन बिखराव की ओर...

(पेज 8 से आगे)

डब्ल्यू.यू. का नेतृत्व जो इस 'प्रधान जी' संस्कृति को बढ़ावा देता है और उसका आनन्द लेता है। और दूसरी ज़िम्मेदार शक्तियाँ हैं अपने आपको देश के मज़दूरों को 'इंक़लाबी' केन्द्र घोषित करने वाले और अपने आपको नौजवानों का 'क्रान्तिकारी' संगठन बताने वाले कुछ बुद्धिजीवी संगठन। बल्कि कहना चाहिए कि अपने आपको क्रान्तिकारी घोषित करने वाले ये संगठन मज़दूरों के बीच राजनीतिक चेतना की कमी के लिए प्रमुख तौर पर ज़िम्मेदार हैं, क्योंकि ये मज़दूरों को सही नेतृत्व देने और उनकी राजनीतिक चेतना का विकास करने की बजाय पुछल्लावाद के शिकार हैं। यानी कि यह सोच कि मज़दूर आबादी स्वयं जो भी करेगी वह सही करेगी और इसमें उन्हें कुछ भी सलाह, मार्गदर्शन और नेतृत्व की आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि आन्दोलन के सभी नाज़ुक मोड़ों पर, जहाँ पर एक सही दिशा निर्देशन की ज़रूरत थी, ये संगठन स्वतःस्फूर्तता की पूँछ पकड़कर चलते रहे। और साथ ही ये 'इंक़लाबी' और 'क्रान्तिकारी' संगठन उन लोगों और संगठनों के बारे में मज़दूरों में और यूनियन के नेतृत्व के बीच कुत्सा-प्रचार और अफ़वाह फैलाने की कार्रवाई करते रहे, जो कि मज़दूर आन्दोलन को एक सही दिशा देने के लिए एम.एस.डब्ल्यू.यू. के नेतृत्व को लगातार उपयुक्त सुझाव-सलाह दे रहे थे। ये संगठन आन्दोलन को किसी भी तरह दिल्ली ले जाने से रोकना चाहते थे, क्योंकि इन्हें भय था कि दिल्ली जाने पर उनके प्रभाव में कमी आ जायेगी और अन्य मज़दूर संगठन आन्दोलन पर हावी हो जायेंगे। बताने की ज़रूरत नहीं कि यह बेबुनियाद डर था और दिखला रहा था कि ये तथाकथित 'इंक़लाबी' और 'क्रान्तिकारी' संगठन वास्तव में आन्दोलन की बेहतरी के बारे में नहीं सोच रहे थे, बल्कि अपने संकीर्ण सांगठनिक स्वार्थ के बारे में सोच रहे थे। कानाफूसी, खुसर-फुसर के ज़रिये ये नेतृत्व की राय बनाते रहे कि उन ताक़तों को संघर्ष में किनारे किया जाये जो दिल्ली जाने की बात कर रही हैं। और यह प्रक्रिया यहाँ तक पहुँची कि इसके लिए ये संगठन संशोधनवादी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से भी अपवित्र गठबन्धन बनाने लगे। कहने की ज़रूरत नहीं है कि ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें भी संघर्ष को दिल्ली ले जाने के बहुत पक्ष में नहीं हैं। नतीजतन, 18 जुलाई 2013 के प्रदर्शन में एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व ने यह शर्त रखी कि जो संगठन कोई आलोचनात्मक बात नहीं रखेगा, उसे ही मंच से बोलने दिया जायेगा। जाहिर है कोई भी संगठन जो कि आन्दोलन की सफलता से सरोकार रखता है ऐसी शर्त पर बात रखने की बजाय बात न रखना और खुद ही किनारे हो जाना पसन्द करेगा। यह पूरी घटना वास्तव में यही दिखला रही है कि अब एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व जनवादी तरीके से संवाद और बातचीत तक से डरता है और चाहता है किसी तरह से मज़दूरों के बीच वह बात न चली जाये, जिससे वह घबराता है। इस पूरी कार्रवाई के लिए एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व मारुति के मज़दूरों के प्रति कोई जवाबदेही नहीं समझता है, क्योंकि कोई ऐसा मंच ही नहीं है जिस पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में आम मारुति मज़दूरों की कोई भागीदारी हो। महीने-दो महीने पर जनरल बॉडी मीटिंग होती है और उसमें भी मज़दूरों से कोई राय नहीं ली जाती कि आगे क्या योजना हो। उन्हें पहले से बन्द कमरों में बनी योजना के बारे में सूचित कर दिया जाता है, जो कि तथाकथित 'इंक़लाबी' और 'क्रान्तिकारी' संगठनों की खुसर-फुसर की मदद से बनती है। जाहिर है कि यूनियन के भीतर नेतृत्व किसी भी जनवादी कार्यपद्धति पर अमल नहीं करता। उसने मज़दूरों की भी यही चेतना बना रखी है कि 'प्रधान लोग फैसला कर लेंगे!' यह चेतना बनाने में तथाकथित 'इंक़लाबी' और 'क्रान्तिकारी' संगठनों की भी भूमिका है।

3. ऐसा भी नहीं है कि एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व पूरी तरह कानाफूसीवादी 'इंक़लाबी' और 'क्रान्तिकारी कामरेडों' के कहे पर अमल करता हो। आन्दोलन के बिखराव की ओर बढ़ने का तीसरा कारण यह है कि एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व व्यवहारवादी तरीके से उस ताक़त का पुछल्ला बनता है जो उसे स्थानीय तौर पर शक्तिशाली लगता है, या जो उसे पैसे से सहायता करता है। मिसाल के तौर पर, जब पहले चक्र में आन्दोलन गुड़गाँव-मानेसर में था तो एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की पूँछ पकड़कर चल रहा था; जब वहाँ कुछ नहीं मिला तो रोहतक में प्रदर्शन किया जहाँ पर यूनियन नेतृत्व सीटू की शरण में था; उसके बाद जब केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से थोड़ा मन-मुटाव हुआ तो आन्दोलन को कैथल ले जाया गया जहाँ पर एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व खाप पंचायतों के चरणों में साष्टांग दण्डवत हो गया। जब वहाँ बात नहीं बनी तो उसके बाद आन्दोलन वापस चक्कर लगाकर गुड़गाँव-मानेसर पहुँचा। एक बार फिर से बागडोर सीटू, एक्टू आदि जैसी केन्द्रीय संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों के हाथों में है। मिसाल के तौर पर, एक्टू ने एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व को एक लाख रुपये का चन्दा दिया। इसके साथ ही हर जगह अखबारों में एक्टू ने यह प्रचारित करना शुरू कर दिया है कि यह आन्दोलन उसके नेतृत्व में चल रहा है। यहाँ तक कि एक्टू की प्रेस विज्ञप्तियों में एम.एस.डब्ल्यू.यू. का कहीं नाम तक नहीं होता! इस पर एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व को कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि एक्टू ने उसे एक लाख रुपये का सहयोग किया है। एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व अब कहता भी है कि अब तो वह उसकी ही बात मानेगा जो उसे आर्थिक रूप से भी सहयोग देगा! जाहिर है, कि आन्दोलन का नेतृत्व राजनीतिक पतन की अवस्था में जा रहा है। इस प्रवृत्ति के ख़िलाफ़ भी तथाकथित 'इंक़लाबी कामरेडों' और 'क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी कामरेडों' ने कोई संघर्ष नहीं चलाया, बल्कि इसे बढ़ावा ही दिया। क्योंकि इन लोगों का तो मानना ही यही है कि मज़दूरों को नेतृत्व की ज़रूरत नहीं है, वे खुद ही अपना नेतृत्व, दिशा-निर्देशन और मार्गदर्शन कर लेंगे, हमें तो बस उनकी पूँछ पकड़कर चलना है। तो स्थिति यह है कि एम.एस.डब्ल्यू.यू. नेतृत्व किसी ताक़त (केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें, खाप, स्थानीय चुनावी पार्टियों के नेता, आदि) की पूँछ पकड़कर चलता है, और ये तथाकथित 'इंक़लाबी-क्रान्तिकारी कामरेड' एम.एस.डब्ल्यू.यू. के नेतृत्व की पूँछ पकड़ कर चलते हैं और उनके कान में 'लगे रहो' का मन्त्र फूँकते रहते हैं। जो सबसे आगे चलता है वह संघर्ष को गड्ढे में ले जाये, तो सभी गड्ढे में जाते हैं। और यही इस समय हो रहा है। इस पूरी प्रक्रिया में नुकसान आम मारुति मज़दूरों के आन्दोलन का होता है।

निष्कर्ष

स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है कि यह आन्दोलन कमज़ोर होते-होते पर बिखराव की मंज़िल पर पहुँच रहा है। कैथल में 19 मई को हुए लाठी चार्ज के बाद से ही समस्त मज़दूरों में राजस्थान और मध्यप्रदेश के मज़दूरों का धड़ा पीछे हट चुका है। हरियाणा के मज़दूरों का भी एक हिस्सा अब नियमित तौर पर नहीं आ रहा है। केवल कुछ मज़दूर ही अब आ रहे हैं। यह 18 जुलाई 2013 के प्रदर्शन में ही दिख गया है। अफ़सोस की बात यह है कि देश भर की वामपंथी पत्र-पत्रिकाएँ और बुद्धिजीवी इस वस्तुगत तस्वीर को पेश करने की बजाय अपने आपको रोमांचित करने में लगे हुए हैं और ऐसे लेख और रिपोर्ट छाप रहे हैं, जो कि ऐसी तस्वीर पेश करती हैं मानो मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का आन्दोलन अब विजय की कगार पर खड़ा है, पूरे देश में मज़दूर इसके पक्ष में खड़े हो गये हैं, गुड़गाँव-मानेसर का मज़दूर इसके पक्ष में उठ खड़ा हुआ है। अगर ऐसा होता तो गत 18 जुलाई को मज़दूर और समर्थक संगठनों को मिलाकर 300 लोगों की भीड़ जुटाने के लाले नहीं पड़ते। दिल्ली और मुम्बई में मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के आन्दोलन के समर्थन में कार्यकर्ता और बुद्धिजीवी 100-200 की संख्या में ज़रूर जुटते हैं, लेकिन उसके बूते आन्दोलन नहीं जीता जा सकता। न तो ऐसा कभी हुआ है और न ही हो सकता है। ऐसे में, क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों का यह कर्तव्य बनता है कि इस आन्दोलन की एक सही वस्तुगत स्थिति से लोगों को वाक़िफ़ करायें और इस बात के कारणों की पड़ताल करें कि आन्दोलन संकटग्रस्त और बिखराव की स्थिति में क्यों है। लेकिन अफ़सोस की बात है कि वे सारी ऊर्जा अपने आपको उत्साहित और रोमांचित करने में खर्च कर रहे हैं और लोगों को भी भ्रमित कर रहे हैं। बताने की ज़रूरत नहीं है कि झूठी आशा निराशा से भी ज़्यादा ख़तरनाक होती है।

हमारा मानना है कि मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों ने लम्बे समय तक एक साहसपूर्ण संघर्ष चलाया और वह साहस एक मिसाल है। लेकिन यूनियन नेतृत्व की ग़लत प्रवृत्तियों, अवसरवाद और व्यवहारवाद के कारण आन्दोलन को सही दिशा नहीं मिल सकी और यही कारण है कि आज आन्दोलन इस स्थिति में है। दूसरा कारण, आन्दोलन में 'इंक़लाबी-क्रान्तिकारी' कामरेडों की अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी, पुछल्लावादी सोच, और कानाफूसी और कुत्साप्रचार की राजनीति का असर है। और तीसरा असर है, एम.एस.डब्ल्यू.यू. के नेतृत्व का स्वयं का पुछल्लावाद जो कभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की पालकी का कहार बनता है तो कभी खापों के समक्ष दण्डवत हो जाता है। इन कारणों के चलते आज एक सम्भावनासम्पन्न मज़दूर आन्दोलन जो पूरे देश के मज़दूरों में उम्मीद का स्रोत और एक मिसाल बन सकता है, वह गम्भीर बिखराव और संकट का शिकार है। इन कारणों पर गम्भीरता से विचार की ज़रूरत है।

समाजवाद और धर्म

(पेज 12 से आगे)

तो शामिल करते हैं और न हमें करना चाहिए। और यही कारण है कि हम ऐसे सर्वहाराओं को, जिनमें अभी तक पुराने पूर्वाग्रहों के अवशेष विद्यमान हैं, अपनी पार्टी में शामिल होने पर न तो रोक लगाते हैं, न हमें इस पर रोक लगानी चाहिए। हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शिक्षा सदा देंगे और हमारे लिए विभिन्न "ईसाइयों" की विसंगतियों से संघर्ष चलाना भी जरूरी है। लेकिन इसका जरा भी यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक प्रश्न को प्रथम वरीयता दे देनी चाहिये। न ही इसका यह अर्थ है कि हमें उन घटिया मत-मतान्तरों और निरर्थक विचारों के कारण, जो तेजी से महत्वहीन होते जा रहे हैं और स्वयं आर्थिक विकास की धारा में तेजी से कूड़े के ढेर की तरह किनारे लगते जा रहे हैं, वास्तविक क्रान्तिकारी आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष की शक्तियों को बँट जाने देना चाहिए।

प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग ने अपने आप को हर जगह धार्मिक झगड़ों को उभाड़ने के दुष्कृत्यों में संलग्न किया है, और वह रूस में भी ऐसा करने जा रहा है—इसमें उसका उद्देश्य आम जनता का ध्यान वास्तविक महत्व की और बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से हटाना है जिन्हें अब समस्त रूस का सर्वहारा वर्ग क्रांतिकारी संघर्ष में एकजुट हो कर व्यावहारिक रूप से हल कर रहा है। सर्वहारा की शक्तियों को बाँटने की यह प्रतिक्रियावादी नीति, जो आज ब्लैक हंड्रेड (राजतंत्र समर्थक गिरोहों) द्वारा किये हत्याकाण्डों में मुख्य रूप से प्रकट हुई है, भविष्य में और परिष्कृत रूप ग्रहण कर सकती है। हम इसका विरोध हर हालत में शान्तिपूर्वक, अडिगता और धैर्य के साथ सर्वहारा एकजुटता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शिक्षा द्वारा करेंगे – एक ऐसी शिक्षा द्वारा करेंगे जिसमें किसी भी प्रकार के महत्वहीन मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं है। क्रान्तिकारी सर्वहारा, जहाँ तक राज्य का संबंध है, धर्म को वास्तव में एक व्यक्तिगत मामला बनाने में सफल होगा। और इस राजनीतिक प्रणाली में, जिसमें मध्यकालीन सड़न साफ़ हो चुकी होगी, सर्वहारा आर्थिक गुलामी के, जो कि मानव जाति के धार्मिक शोषण का वास्तविक स्रोत है, उन्मूलन के लिए सर्वहारा वर्ग व्यापक और खुला संघर्ष चलायेगा।

हस्ताक्षर : एन. लेनिन
नोवाया झिज्न, अंक 28, 3 दि.

लेनिन कथा के दो अंश...

शीत प्रासाद पर क़ब्ज़ा

अस्थायी सरकार अपने हिमायतियों के साथ शीत प्रासाद में डेरा डाले हुई थी। शीत प्रासाद का एक अग्रभाग नेवा नदी की ओर था और दूसरा विशाल द्वोर्त्सोवाया स्क्वायर की ओर। वह सफ़ेद स्तम्भों और मूर्तियों से सजा हुआ था। कार्निसों पर बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ और कलश बने हुए थे। शिखर पर पंख फैलाये हुए बहुत बड़ी सुनहरी चील बनी हुई थी। पहले इस महल में ज़ार रहता था।

लेनिन सैनिक-क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष पोद्वोइस्की से बोले :

"सारा पेत्रोग्राद हमारे अधिकार में है, पर शीत प्रासाद पर अभी क़ब्ज़ा नहीं हो पाया है। उस पर भी यथाशीघ्र क़ब्ज़ा करके अस्थायी सरकार को गिरफ़्तार करना है।"

25 अक्टूबर को, अक्टूबर क्रान्ति की पहली सुबह को, लोगों ने लेनिन की 'रूस के नागरिकों से' अपील पढ़ी।

उसमें लेनिन ने लिखा था कि अस्थायी सरकार को अपदस्थ करके सोवियतों ने सत्ता अपने हाथों में ले ली है। क्रान्ति विजयी रही है।

बात सचमुच ऐसी ही थी। अस्थायी सरकार के हाथों में कोई सत्ता नहीं रह गयी थी। मगर उसके मन्त्रियों ने ख़ुद को शीत प्रासाद में बन्द कर लिया था।

"यह क्या बात है?" लेनिन ने कड़ाई से पोद्वोइस्की से पूछा।

"घबराइये नहीं। शीत प्रासाद आज हमारा हो जायेगा," सैनिक-क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष ने जवाब दिया।

लाल गार्ड टुकड़ियों और क्रान्तिकारी दस्तों को शीत प्रासाद घेरने का आदेश दे दिया गया।

मज़दूरों और सैनिकों ने शीत प्रासाद के आसपास की सड़कों और पहुँच-मार्गों पर अधिकार कर लिया। शीत प्रासाद चारों ओर से घिर गया। ख़ास-ख़ास जगहों पर तोपें लगा दी गयीं। तारपीडो नौकाओं ने धीरे-धीरे नेवा में प्रवेश कर शीत प्रासाद के सामने लंगर डाल दिया।

नेवा में ही खड़े रणपोत 'अव्रोरा' की तोपें भी शीत प्रासाद की ओर तन गयीं। नाकेबन्दी पूरी हो गयी। यह 25 अक्टूबर (7 नवम्बर) 1917 की रात की बात है।

लोगों को 1905 का ख़ूनी रविवार याद था। तब यहाँ, इसी प्रासाद के सामने के विशाल, भव्य प्रांगण में पीटर्सबर्ग के कल-कारख़ानों के हज़ारों मज़दूर शान्तिपूर्ण ढंग से और देव-प्रतिमाएँ लिये हुए इकट्ठे हुए थे। वे "पितातुल्य" ज़ार से सहायता की प्रार्थना करने, रोटी की भीख माँगने आये थे। मगर बदले में उन्हें मिलीं गोलियाँ। उस रविवार को शीत प्रासाद के सामने स्क्वायर में हज़ारों निहत्थे, निरीह मज़दूरों का ख़ून बहा।

इसलिए इस बार, अक्टूबर 1917 में, मज़दूर यहाँ देव-प्रतिमाओं के साथ नहीं आये।

शीत प्रासाद, अबके देखना हमारी ताक़त!

कमिसार और सैनिक-क्रान्तिकारी समिति के सदस्य कारों और घोड़ों पर मोर्चाबन्दियों का निरीक्षण कर रहे थे।

"साथियो, धीरज धारिये! थोड़ी-सी ताक़त और बढ़ा लें। साथी लेनिन क्रान्ति का नेतृत्व कर रहे हैं।"

"लेनिन!" मज़दूरों और सैनिकों की मोर्चाबन्दियाँ गूँज गयीं।

स्मोल्नी में लेनिन को लगातार रिपोर्टें मिल रही थीं कि शीत प्रासाद के घेराव का काम कैसे चल रहा है। वह पेंसिल हाथ में लिये हुए नक़्शे पर झुके हुए थे। इन सड़कों पर अमुक-अमुक टुकड़ियाँ तैनात हैं, अमुक टुकड़ी यहाँ है... यहाँ आदमियों की संख्या बढ़ानी होगी। क्रोन्श्ताद्त से जहाज़ी आ गये हैं। रणपोत 'अव्रोरा' तैयार खड़ा है...

"साथियो, समय हो गया है। हमला शुरू कर दीजिये!" लेनिन ने आदेश दिया।

शहर में ठण्डी साँझ उतर आयी थी। हवा चल रही थी। घरों के दरवाज़े बन्द हो चुके थे। प्रकाशरहित खिड़कियाँ अपरिचित-सी लग रही थीं। सड़कों पर जगह-जगह अलाव जले हुए थे। हवा में कड़वा धुआँ मिला हुआ था।

शीत प्रासाद का घेरा कसता जा रहा था।

उधर प्रासाद में भी लोग हाथ पर हाथ धारे नहीं बैठे थे। वे भी लड़ाई की तैयारी कर रहे थे। युंकरों और अफ़सरों ने लकड़ियों के बैरिकेड खड़े कर प्रासाद के सभी रास्ते बन्द कर दिये। बैरिकेडों के बीच मशीनगनें तैनात थीं।

शीत प्रासाद के इर्दगिर्द अशुभ नीरवता छायी हुई थी।

स्मोल्नी से सैनिक-क्रान्तिकारी समिति को पुन: लेनिन का सन्देश मिला :

"देर करना अब ठीक नहीं। शीत प्रासाद पर हमला तुरन्त शुरू करिये।"

और रात के अँधेरे में, ख़ामोशी में नेवा के ऊपर का आसमान तोपों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा, हवा थर्रा गयी।

यह 'अव्रोरा' की तोपों ने हमला शुरू करने का संकेत दिया था।

समुद्र की विकराल लहरों की तरह लाल गार्ड और सैनिक शीत प्रासाद की ओर बढ़ चले। पास की सड़कों से तोपें गोले बरसाने लगीं। मशीनगनों से गोलियों की बौछार शुरू हो गयी। शीत प्रासाद के गिर्द खड़े लकड़ी के बैरिकेडों पर आग बरसाती हुई बख़्तरबन्द गाड़ी घड़घड़ाती हुई प्रासाद स्क्वायर की ओर बढ़ी। युंकर हथियार फेंक प्रासाद के अन्दर भागे।

"हुर्रा! मज़दूर क्रान्ति ज़िन्दाबाद!" युंकरों और अफ़सरों का पीछा करते हुए लाल गार्ड और सैनिक चिल्लाये।

लाल सैनिकों की टुकड़ियाँ प्रासाद में दाख़िल हुईं। पहली बार उसे अन्दर से देखकर आँखें चकाचौंध हो गयीं : सैकड़ों कमरे और हॉल, बिल्लौर के फ़ानूस, मख़मल, रेशम, तस्वीरें, मूर्तियाँ, क़ीमती फ़र्नीचर, बड़े-बड़े दर्पण...

किसी लाल गार्ड ने सुनहरे फ़्रेम से मढ़े दर्पण पर संगीन से चोट की और झनझनाकर काँच के टुकड़े ज़मीन पर बिखर गये।

"पागल हो गये हो क्या?" साथियों ने उसे डाँटा। "आज से यह ज़ार की नहीं, हमारी, जनता की सम्पत्ति है।"

बन्दूक़ें ताने हुए लाल गार्ड और सैनिक आगे, और आगे बढ़ते गये। उनका नेतृत्व कर रहे थे अन्तोनोव-आव्सेयेन्को, येरेमेयेव, पोद्वोइस्की, आदि। गोटा किनारी वाली नीली वर्दियाँ पहने प्रासाद के नौकरों की डर के मारे घिग्घी बँध गयी थी। अस्थायी सरकार के सभी मन्त्रियों ने अपने को एक हॉल में बन्द कर लिया था और युंकर इस हॉल की रक्षा कर रहे थे।

"युंकरो, अफ़सरो, हथियार डाल दो! और श्रीमान मन्त्री लोगो, आप गिरफ़्तार हैं!"

रात बहुत हो चुकी थी, मगर स्मोल्नी की सभी खिड़कियाँ तेज़ उजाले से जगमगा रही थीं। सीढ़ियों, गलियारों और कमरों में लोगों की भीड़ लगी हुई थी। सभी बेहद उत्तेजित थे। और बेचैनी से शीत प्रासाद के समाचारों का इन्तज़ार कर रहे थे।

ज़ोर-ज़ोर से बूट बजाते हुए चलते सैनिक-क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष पोद्वोइस्की ने कमरे में प्रवेश किया।

अक्टूबर महीने की ठण्ड और हवा से उनका चेहरा कठोर-सा हो गया था।

"साथी लेनिन! शीत प्रासाद पर क़ब्ज़ा कर लिया गया है," सैनिक ढंग से सैल्यूट करते हुए उन्होंने कहा।

लेनिन झटके से खड़े हुए और पोद्वोइस्की को कसकर गले लगा लिया।

खम्भों वाला सफ़ेद हॉल

पहले यहाँ उत्सव मनाये जाते थे। संगीत गूँजता था। नृत्य होते थे। लकड़ी के पालिशदार फ़र्श पर स्मोल्नी विद्यालय की लड़कियों की रेशम जैसी चमकीली जूतियाँ फिसला करती थीं।

ओरलोव इलाक़े से आये ग़रीब सिपाही ने सपने में भी नहीं सोचा था कि कभी वह भी इस खम्भों वाले सफ़ेद हॉल में पैर रखेगा। तब उसे स्मोल्नी के नज़दीक भी नहीं फटकने दिया जाता।

और अब...अब वह इस हॉल में हो रही सोवियतों की दूसरी कांग्रेस में भाग ले रहा था।

स्मोल्नी का सफ़ेद हॉल लोगों से खचाखच भरा हुआ था। उनमें कांग्रेस में भाग लेने वाले भी थे और दर्शक तथा दूसरे लोग भी, जैसे धारीदार क़मीज़ें और नीली जैकेटें पहने और कमर पर हथगोले लटकाये जहाज़ी, कल शीत प्रासाद पर क़ब्ज़ा करने वाले हथियारबन्द लाल गार्ड, दूर-दूर के गाँवों से सोवियतों के प्रतिनिधियों के तौर पर आये हुए दढ़ियल किसान और कल-कारख़ानों के मज़दूर।

कुर्सियों और बेंचों के अलावा बहुत-से लोग फ़र्श और खिड़कियों पर भी बैठे हुए थे। बहुत-से बैठने की जगह न मिलने की वजह से खड़े थे। सभी की छातियों पर लाल फ़ीतियाँ लगी हुई थीं। सारा हॉल तम्बाकू के धुएँ और शोर-गुल से भरा हुआ था।

"हम जीत गये हैं! बुर्जुआ वर्ग मुर्दाबाद! सारी सत्ता सोवियतों को!"

ओरलोव इलाक़े से आया सैनिक उत्सुकता-भरी आँखों से सबकुछ देख रहा था। विशाल हॉल की ऊँची छतों को भी, संगमरमर के खम्भों को भी और सामने की दीवार पर टँगे सुनहरे, आदमक़द फ़्रेम को भी। उसमें से ज़ार का चित्र हटा दिया गया था। इसलिए अब वह ख़ाली था।

मगर सिपाही बड़ी व्याकुलता के साथ लेनिन के आने का इन्तज़ार भी कर रहा था।

तभी आसपास लोग चिल्लाये :

"लेनिन! लेनिन!"

बहुत-से उन्हें अच्छी तरह देखने के लिए अपनी जगह से खड़े हो गये। अध्यक्षमण्डल के सदस्यों ने हॉल में प्रवेश किया और मंच पर रखी मेज़ के पीछे बैठ गये। उसमें से एक काले चमड़े की जैकेट और कमानीरहित चश्मा पहने था। देखने वाला उसे सैनिक भी कह सकता था और नहीं भी। पर वह लगता बड़ा दृढ़निश्चयी था।

"स्वेर्दलोव हैं," किसी ने सिपाही को बताया।

और फिर उसे ऊँचे क़द के और दुबले-पतले जुझारू बोल्शेविक फ़ेलिक्स एदमुन्दोविच द्ज़ेर्जीन्स्की और चौकन्नी तथा भेदती हुई निगाहों वाले सैनिक क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष निकोलाई इल्यीच पोद्वोइस्की भी दिखाये गये।

अध्यक्ष ने कांग्रेस का उद्घाटन किया और साथी लेनिन को भाषण के लिए आमन्त्रित किया।

सिपाही पंजों के बल खड़ा हो गया। ताकि अच्छी तरह देख सके कि लेनिन नाम का यह आदमी कैसा है। उसने पाया कि वह गठीले बदन और मँझोले क़द के हैं। भौंहें बीच में एकाएक उठती हुई कनपटियों को छू रही हैं। और आँखें ऐसी कि मानो सीधे आपके दिल में झाँक रही हों...

लेनिन तेज़ी से मंच पर चढ़े। हॉल में बैठे सभी लोग खड़े हो गये। टोपियाँ हवा में उछलने लगीं।

"लेनिन ज़िन्दाबाद!"

मंच पर खड़े होकर, सबसे पहले लेनिन ने सारे हॉल पर दृष्टिपात किया। उनके सामने ख़ुशी से जगमगाते चेहरों, सादे और ग़रीबी के सूचक कपड़े पहने लोगों, आम लोगों का सागर था। यहाँ फ़्रॉक कोट और सफ़ेद क़मीज़ें पहले सम्भ्रान्त पुरुष और फ़ैशनेबुल पोशाकों वाली भद्र महिलाएँ नहीं थीं। यहाँ थे मज़दूरों, किसानों और सैनिकों के प्रतिनिधि, यानी सिर्फ़ मेहनतकश लोग। लेनिन ने अनुभव किया कि वह इन लोगों के सुख और भाग्य के लिए उत्तरदायी हैं।

लेनिन ने हाथ ऊपर उठाया। वह भाषण शुरू करने की इजाज़त माँग रहे थे। शनै: शनै: सारे हॉल में ख़ामोशी छा गयी। लेकिन लोग बैठे नहीं। वे खड़े-खड़े ही लेनिन का भाषण सुनते रहे।

लेनिन ने शान्ति की चर्चा की। उन्होंने कहा कि मज़दूर और किसान युद्ध नहीं चाहते। सोवियत सरकार भी युद्ध नहीं चाहती। युद्ध का अन्त करना चाहिए। आम लोग शान्ति से रहना चाहते हैं। और तब उन्होंने अपनी शान्ति सम्बन्धी आज्ञप्ति पढ़कर सुनायी। यह आज्ञप्ति उन्होंने उसी सुबह बोंच- ब्रुयेविच के घर से स्मोल्नी लौटने पर लिखी थी।

कांग्रेस में उपस्थित लोगों ने लेनिन को बड़े ध्यान से सुना। जर्मनों के साथ लड़ाई चार साल से चल रही थी। लोग उससे तंग आ गये थे।

"तो यह है हमारी सोवियत सरकार, जनता के हित की सोचने वाली न्यायप्रिय सरकार!" ओरलोव इलाक़े से आये सैनिक ने सोचा।

सारा हॉल "हुर्रा!" के उद्घोषों से

(पेज 15 पर जारी)

नहीं जानते तो सीखेंगे

स्मोल्नी के दरवाज़े पर सन्तरी खड़ा था।

"आपका अनुमति-पत्र!"

और उसने बन्दूक़ आगे कर तीनों मज़दूरों को रोक दिया। दो कुछ बड़े और दाढ़ियों वाले थे। तीसरा जवान था। उसका नाम था रोमान।

"अनुमति-पत्र कहाँ देते हैं?" एक ने बन्दूक़ को हटाते हुए शान्ति से पूछा।

"ऐ-ऐ...आगे बढ़ने की कोशश न करना!" सन्तरी चिल्लाया। "अनुमति-पत्र कमाण्डेट देता है।"

तभी स्मोल्नी का कमाण्डेण्ट, भूतपूर्व जहाज़ी मल्कोव ख़ुद दरवाज़े पर आ गया।

"आपको किससे मिलना है?"

"लेनिन से मिलना है। ज़रूरी काम है," रोमान ने जवाब दिया।

"बहुत ज़रूरी काम है," दूसरे ने भी उसका साथ दिया।

"देखो तो इन्हें! मल्कोव ने उन्हें ऊपर से नीचे तक देखते हुए कहा। "अक्टूबर के दिनों में कहाँ थे?"

"शीत प्रासाद पर हमला करने वालों के साथ। और कहाँ?"

पन्द्रह मिनट बाद तीनों जन-कमिसार परिषद के स्वागत कक्ष में खड़े थे। कमरा काफ़ी बड़ा था, पर फ़र्नीचर बहुत साधारण था। बस बीच में लकड़ी की दो बेंचें और उनके दोनों ओर एक-एक मेज़ और कुछ कुर्सियाँ।

मज़दूरों ने कमरे पर निगाह दौड़ायी। "बिल्कुल हमारे घरों जैसा है!"

तभी सेक्रेटरी ने दरवाज़ा खोला :

"आइये, साथी लेनिन आपका इन्तज़ार कर रहे हैं।"

ख़ुद लेनिन ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। मज़दूरों ने ग़ौर किया कि लेनिन छोटे क़द के तथा फ़ुर्तीले हैं और उनकी सजीव आँखों में एक अद्भुत चमक है।

"नमस्ते, साथियो। बैठिये।"

उन्हें बिठाकर लेनिन ख़ुद भी बैठ गये। मेज़ के उस तरफ़ नहीं,

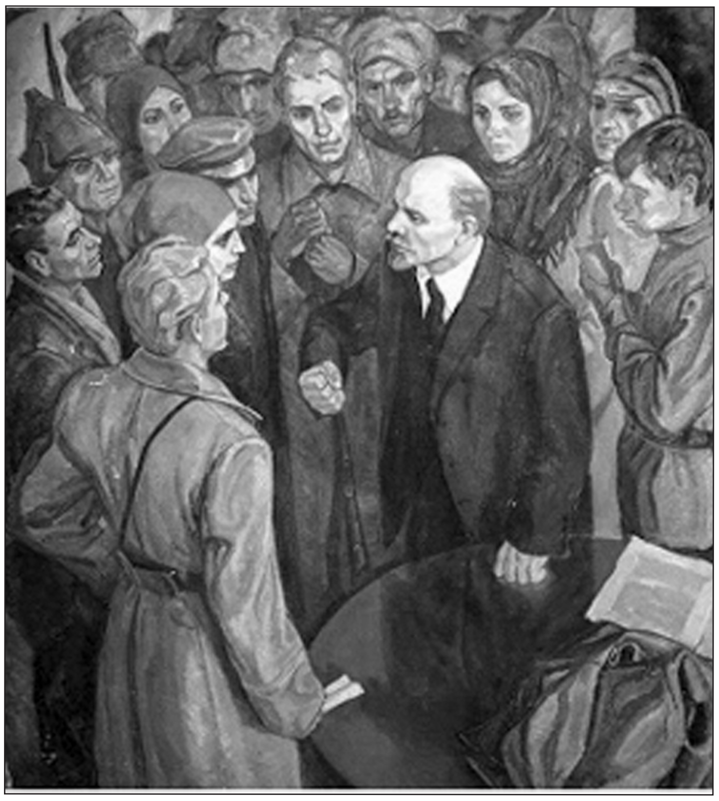

बल्कि उन्हीं की बग़ल में। उनके हाथ में पेंसिल थी, जिसे हिलाते हुए वह जल्दी-जल्दी पूछ रहे थे :

"किस कारख़ाने से आये हैं? क्या पेशा है? कारख़ाने का कामकाज कैसा चल रहा है? कच्चा माल है? मज़दूर-नियन्त्रण काम कर रहा है? यहाँ किस काम से आये हैं? देखिये, झिझकिये मत!"

और फिर मुस्कुरा पड़े।

लेनिन की मुस्कुराहट से रोमान की हिम्मत बँधी और वह बिना किसी लाग-लपेट के बताने लगा कि वे यहाँ किस काम से आये हैं। रोमान और उसके साथी लेनिन को कारख़ाने के बारे में बताना चाहते थे, पर वे अब वहाँ काम नहीं करते थे। उन्हें जन-कमिसारियतख में काम करने भेज दिया गया था। ज़ारशाही के ज़माने के कर्मचारी सोवियत सरकार के साथ काम नहीं करना चाहते थे, इसलिए नौकरी छोड़कर भाग गये थे। और जो नहीं भागे थे, वे बेगार टाल रहे थे, इसलिए मज़दूरों को भेजा गया...

"क्या सोवियत सरकार की सहायता के लिए?" व्लादीमिर इल्यीच ने बीच में टोका। "तो क्या हुआ?"

व्लादीमिर इल्यीच ने आँखों को कुछ सिकोड़ा और ग़ौर से रोमान को देखते रहे। रोमान संकोच के मारे अपने हलके भूखे बालों में हाथ फेरने लगा।

"लेकिन हमसे निभ नहीं पा रहा है, व्लादीमिर इल्यीच। इसलिए हमें वापस भेजने के लिए कह दीजिये। कारख़ाने में हम कुछ काम तो करते थे, लेकिन यहाँ जन-कमिसारियत में हमारी स्थिति बिल्कुल अन्धों जैसी है।"

"आप सोचते हैं कि मेरे लिए राज्य का संचालन करना आसान है?" जवाब के बदले व्लादीमिर इल्यीच ने सवाल किया। "आप समझते हैं कि मुझे इसका कोई अनुभव है? मैं भी तो पहले कभी जन-कमिसारों की परिषद का अध्यक्ष नहीं था और हमारे दूसरे जन-कमिसार भी पहले कभी जन-कमिसार नहीं थे।"

एक मज़दूर ने मानो फिर भी सहमत न होते हुए सिर हिलाया :

"हमारे लिए सबकुछ अपरिचित है, नया है।"

"मगर पुराने को तो हमने और आपने जड़ से ख़त्म कर दिया है! ऐसे में आप ही बताइये, नये का निर्माण कौन करेगा?"

लेनिन मज़दूरों के और पास खिसक आये और समझाने लगे कि यह सही है कि मज़दूरों को जानक. ारी, अनुभव के बग़ैर जन-कमिसारियतों में कठिनाई हो रही है मगर सर्वहारा के पास एक तरह की जन्मजात समझ-बूझ है। जन-कमिसारियतों में हमारी अपनी, पार्टी की, सोवियतों की नीति पर अमल करवाने की ज़रूरत है। यह काम अगर मज़दूर नहीं करेंगे, तो और कौन करेगा? सब जगह मज़दूरों के नेतृत्व, मज़दूरों के नियन्त्रण की ज़रूरत है।

"और अगर ग़लती हो गयी तो?"

"ग़लती होगी, तो सुधारेंगे। नहीं जानते तो सीखेंगे। इस तरह साथियो," खड़े होते हुए व्लादीमिर इल्यीच ने दृढ़तापूर्वक कहा, "कि पार्टी ने अगर आपको भेजा है, तो अपना कर्त्तव्य निभाइये।" और फिर अपनी उत्साहवर्धक मुस्कान के साथ दोहराया, "नहीं जानते तो सीखेंगे।"

लेनिन के साथ ऐसी बातचीत के बाद मज़दूरों का सारा संकोच जाता रहा। अब, जब तक वे सारा काम नहीं सीख जाते, सुबह से शाम तक वे जन-कमिसारियत में डटे रहेंगे।

"साथी लेनिन, हम वायदा करते हैं कि अपना कर्त्तव्य पूरी तरह निभायेंगे," मज़दूरों ने कहा।

जन-कमिसारों की परिषद के अध्यक्ष के कमरे से निकलते हुए वे आपस में कह रहे थे कि व्लाद. ीमिर इल्यीच ने ठीक ही कहा कि मज़दूर-किसानों की सरकार हमारी सरकार है और हमें ही उसका सारा बोझ उठाना है। □

शीत प्रासाद पर क़ब्ज़ा

(पेज 14 से आगे)

गूँज गया। श्वेत हॉल के मरमरी खम्भों ने "हुर्रा!" का ऐसा गगनभेदी उद्घोष पहले कभी नहीं सुना था। शत-शत कण्ठ एक स्वर में गा रहे थे –

उठ अब, ज़ंजीरों में जकड़े
भूखों, दासों के संसार!
हम नया जगत बनायेंगे,
सर्वहारा सबकुछ पायेंगे!

बाद में लेनिन ने भूमि सम्बन्धी आज्ञप्ति पढ़कर सुनायी, जिसे उन्होंने पिछली रात लिखा था। और प्रति. निधियों ने, विशेषत: किसान प्रति. निधियों ने, पुन: लेनिन की आज्ञप्ति का जोशीले स्वरों में समर्थन किया।

25 और 26 अक्टूबर, 1917 को स्मोल्नी के हॉल में हुई सोवियतों की दूसरी कांग्रेस एक महान, ऐतिहासिक घटना थी। इस कांग्रेस में लेनिन ने सोवियत सत्ता की स्थापना की घोषणा की थी।

इसी कांग्रेस में उन्होंने शान्ति और भूमि सम्बन्धी आज्ञप्तियाँ भी पढ़कर सुनायीं और कांग्रेस ने एकस्वर से उनका अनुमोदन किया।

कांग्रेस ने जन-कमिसारों की परिषद निर्वाचित की और व्लादीमिर इल्यीच लेनिन को उसका अध्यक्ष नियुक्त किया।

इस तरह पहली सोवियत सरकार बनी।

कांग्रेस ख़त्म हुई, तो लेनिन ने उसमें भाग लेने के लिए आये मज़दूरों, किसानों और सैनिकों से कहा :

"साथियो, अब आपको शीघ्रा. तिशीघ्र घर लौटना है, लोगों को हमारी विजय के बारे में बताना है। मज़दूर क्रान्ति जीत गयी है। अब हमारी अपनी सोवियत सरकार है। जाइये, सारे रूस में सोवियत सत्ता को मज़बूत बनाइये!"

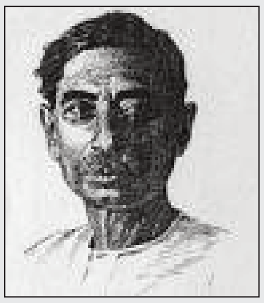

भारतीय जनता के जीवन, संघर्ष और स्वप्नों के सच्चे चितेरे महान कथा-शिल्पी

प्रेमचन्द

के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर

"अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा-लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगी ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अंग्रेजी महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों का सब हित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ायेगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं? कम से कम मेरे लिए तो स्वराज्य का अर्थ यह नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाये।"

– प्रेमचन्द ('आहुति' कहानी की नायिका)

"...इस तरह ज़बरदस्ती करने के लिए जो क़ानून चाहे बना लो। यहाँ कोई सरकार का हाथ पकड़ने वाला तो है ही नहीं। उसके सलाहकार भी तो सेठ-महाजन ही हैं।
...ये सभी नियम पूँजीपतियों के लाभ के लिए बनाये गये हैं और पूँजीपतियों को ही यह निश्चय करने का अधिकार दिया गया है कि उन नियमों का कहाँ व्यवहार करें। कुत्ते को खाल की रखवाली सौंपी गयी है।

– प्रेमचन्द ('रंगभूमि' उपन्यास का पात्र सूरदास)

RNI No. UPHIN/2010/36551

डाक पंजीयनः *SSP/LW/NP-319/2011-2013*
प्रेषित डाकघरः आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथिः दिनांक 20 प्रत्येक माह

23 मासूम बच्चे इस व्यवस्था और इसकी गन्दी चुनावी राजनीति की बलि चढ़ गये!

अपने बच्चों को बचाओ व्यवस्था के आदमख़ोर भेड़िये से!

पिछली 16 जुलाई को बिहार के सारन ज़िले में गंडमान प्राथमिक स्कूल के 23 मासूम बच्चे दोपहर का भोजन (मिड डे मील) खाने के बाद हमेशा की नींद सो गये। करीब 30 बच्चे अब भी अस्पताल में मौत से जूझ रहे हैं। अब पता चल रहा है कि बच्चों को परोसे जाने वाले खाने में तेज़ ज़हर मिलाया गया था। फॉरेन्सिक जाँच करने वाले विशेषज्ञों का कहना है कि मिलाये गये ज़हर में कीटनाशकों से पाँच गुना अधिक तेज़ ज़हर था। ज़हर की घातकता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि बचे हुए बच्चों में ज़हर का असर कम करने के लिए चार दिनों में डॉक्टर दवा के 12000 एम्पुल इस्तेमाल कर चुके हैं।

इस दिल दहलाने वाली घटना ने एक बार फिर सोचने पर मजबूर कर दिया है कि हम आख़िर किस तरह के समाज में रह रहे हैं। कैसा है यह समाज जो ऐसे वहशी दरिन्दों को पैदा कर रहा है जो अपने मुनाफ़े के लिए छोटे-छोटे मासूम बच्चों को दर्दनाक मौत के हवाले कर दे रहे हैं। अभी तक मिले साक्ष्यों से ऐसे आरोपों की पुष्टि होती लग रही है कि बिहार में चुनावी राजनीति के तहत वर्तमान सरकार को कटघरे में खड़ा करने के लिए इस घिनौनी साज़िश को अंजाम दिया गया है। चुनावी राजनीति की सारी राहें ख़ून के दलदल से होकर गुज़रती हैं, लाशों के ढेर पर ही सत्ता के सिंहासन सजते हैं, मगर अपने चुनावी मंसूबों के लिए नन्हे बच्चों की बलि चढ़ाने की यह घटना बताती है कि पूँजीवादी राजनीति पतन के किस गटर में डूब चुकी है।

पिछली 16 जुलाई को स्कूल में मिलने वाला भोजन करने के बाद लगभग 50 बच्चों को उल्टी और पेट दर्द की शिकायत होने पर स्थानीय स्वास्थ्य केंद्र और निजी अस्पतालों में इलाज के लिए ले जाया गया। बच्चों ने खाने में दाल, चावल, आलू और सोयाबीन खाया था। अभी तक उपलब्ध तथ्यों के अनुसार यह भोजन में ज़हर मिलाने का मामला है। बच्चों के यह शिकायत करने पर कि खाना नीम जैसा कड़वा लग रहा है प्राचार्या ने भोजन करने के लिए बच्चों पर दबाव डाला। भोजन सम्बन्धी सारा सामान प्राचार्या के घर पर ही रहता था। इस पूरी घटना से स्कूल में काम कर रही दोनो रसोइयाँ अनभिज्ञ थीं। दोनों में से एक मंजू कुमारी ने खाना चखा था जो अभी अस्पताल में है और

दूसरी रसोइया पानू देवी ने इस हादसे में अपने दोनों बच्चों को खो दिया। मंगलवार को जब बच्चों की हालत बदतर होने लगी तो उन्हें प्राथमिक उपचार केन्द्र ले जाया गया। वहाँ डॉक्टर उपस्थित नहीं था और न ही पानी था। बीमार बच्चों के परिजनों को कहा गया कि वे अपना इन्तज़ाम स्वयं कर लें। वहाँ मात्र एक एम्बुलेंस उपलब्ध था जिसके ड्राइवर ने पहले तो एक बार में कई बच्चों को ले जाने से मना कर दिया और बाद में बच्चों को इसी में छपरा सदर अस्पताल ले जाया गया। वहाँ के इन्तज़ाम प्राथमिक उपचार केन्द्र से भी बेहाल थे। डॉक्टरों के पास सुइयाँ नहीं थीं और न ही पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन। अस्पताल में रोशनी तक नहीं थी। राकेश नामक व्यक्ति ने अपनी बहन के शरीर को दो बार ऐंठते देखकर जब डाक्टर को बुलाया तो डॉक्टर ने राकेश के मोबाइल की रोशनी से देखकर बताया कि उसकी बहन अब नहीं रही। कई बच्चों की जान इस लिए गयी क्योंकि उनका इलाज चार-पाँच घण्टे बाद शुरू हो सका। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में ठेके पर नौकरी कर रहे डॉक्टर ए.आर. अन्सारी और उसकी पत्नी सिर्फ़ हाज़िरी के लिए अस्पताल आते हैं और अपना खुद का नर्सिंग होम चलाते हैं। डा. अन्सारी से पूछने पर उसने बेशर्मी से कहा कि स्वास्थ्य केन्द्र में कोई कमी नहीं है।

सच तो यह है कि अगर स्कूल के पास प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में ही बच्चों को तुरन्त

इलाज मिला होता तो अधिकांश बच्चों की जान बचायी जा सकती थी। बच्चों की उल्टियों से जैविक फॉस्फोरस की तेज़ गन्ध आ रही थी। जिन बच्चों की भी जानें गयी हैं उनके शरीर में इस ज़हर की मात्रा काफी अधिक पायी गयी है। अगर समय से उनका इलाज शुरू कर दिया गया होता और डॉक्टरों के पास सही जानकारी और दवाएँ होतीं तो इतने बच्चे मौत के मुँह में नहीं जाते।

मगर यह शर्मनाक सच्चाई है कि विकास के बड़े-बड़े दावों के बावजूद सरकारी अस्पताल मौत के घर बने हुए हैं। उससे भी बड़ी सच्चाई यह है कि अगर ये बच्चे अमीरों के या खाते-पीते मध्यवर्गीय घरों के होते तो न तो उन्हें ज़हर मिला खाना पड़ता और न ही वे इलाज के अभाव में तड़प-तड़प कर दम तोड़ते। आज़ादी के 66 सालों में देश ने बहुत तरक्की की है, मगर उसका फल ऊपर की 12-15 प्रतिशत आबादी को ही मिल रहा है। जिन ग़रीब मेहनतकशों की जीतोड़ मेहनत और कुर्बानी की बदौलत यह तरक्की हुई है, वे आज भी बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं। उनके बच्चे कभी भूख से दम तोड़ देते हैं तो कभी ज़हरीला खाना खाकर।

इस त्रासद घटना ने एक बार फिर ग़रीबों के लिए चलायी जाने वाली योजनाओं के खोखले दावों का पर्दाफाश किया है। सरकारी घोषणाओं के मुताबिक मिड डे मील योजना का उद्देश्य बच्चों के शरीर में पोषक तत्वों की कमी को दूर करने के लिए पोषक आहार उपलब्ध कराना है। निश्चित ही पोषक तत्वों की कमी खाते-पीते घरों के बच्चों को तो होगी नहीं। इसीलिए आये दिन देश के विभिन्न हिस्सों से इसके तहत परोसे भोजन को खाकर बीमार पड़ने वाले बच्चों की ख़बरें आती रहती हैं। इस घटना के तीसरे ही दिन 19 जुलाई को गोवा में मध्याह्न भोजन खाकर 20 बच्चे बीमार पड़ गये। कुछ समय पहले दिल्ली के त्रिलोकपुरी के प्राथमिक स्कूल में 120 बच्चे इस भोजन को खाकर बीमार हुए थे। मध्य प्रदेश के एक स्कूल में खाने में मरी छिपकली पायी गयी।

माता-पिता शिकायत करते हैं कि बच्चों के खाने में कभी लकड़ी के टुकड़े तो कभी बीड़ी निकलती है। 2012-13 के सेम्पल सर्वे के अनुसार दिल्ली के सरकारी स्कूलों से एकत्र 83 प्रतिशत भोजन के नमूनों में पोषक तत्वों की कमी पायी गयी और इनमें साफ-सफाई की हद दर्जे की कमी पायी गयी है। अगर यह हाल देश की राजधानी का है तो अन्य जगहों की कल्पना रोंगटे खड़े कर देती है।

जिस व्यवस्था में मुनाफ़े या चुनावी फायदे के लिए मासूम बच्चों की बलि चढ़ायी जा सकती है, उसे जल्द से जल्द ख़त्म करने के बारे में अगर हम नहीं सोचते तो इतिहास हमें कभी माफ़ नहीं करेगा। क्या हम अपने बच्चों को एक ऐसे ही समाज में जीने के लिए बड़ा कर रहे हैं जो बच्चों का ख़ून पीकर ज़िन्दा है?

– लता

बोलते आँकड़े चीख़ती सच्चाइयाँ

● भूख और कुपोषण से दुनिया भर में रोज़ 24 हज़ार लोग मरते हैं। इनमें से एक तिहाई मौतें भारत में होती हैं। भूख से मरने वालों में 18 हज़ार बच्चे होते हैं, जिनमें से 6 हज़ार बच्चे भारत के होते हैं। (जनसत्ता, 7 जुलाई 2013)

● इस समय दुनिया में 80 करोड़ लोगों को दो वक़्त की रोटी नहीं मिलती। इनमें से 40 करोड़ भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश में हैं। इन तीनों देशों के खाद्यान्न के भण्डार अन्न से भरे हैं।

● देश में हर साल जितना अनाज बरबाद होता है उससे दस करोड़ बच्चों को एक साल तक खाना खिलाया जा सकता है।

● सरकार हर साल 12-13 रुपये प्रति किलो के भाव गेहूँ ख़रीदती है जिसका भारी हिस्सा गोदामों में पड़े-पड़े ख़राब हो जाता है। फिर उसे 5-6 रुपये या उससे भी कम पर शराब कम्पनियों को बेच दिया जाता है। मगर सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बावजूद गोदामों में पड़ा अनाज भूखे लोगों तक पहुँचाने के लिए सरकार तैयार नहीं है।

● पिछले दस वर्षों में एक्सप्रेस वे, अत्याधुनिक हवाई अड्डे, होटल, अन्तरराष्ट्रीय स्तर के स्टेडियम, शॉपिंग कॉम्प्लेक्स आदि बनवाने पर सरकार ने सार्वजनिक धन से क़रीब 25 लाख करोड़ रुपये खर्च किये हैं। केवल एक वर्ष, 2011-12 के बजट में ही बड़े पूँजीपतियों को 5 लाख करोड़ रुपये की सब्सिडी दी गयी। इसके बहुत छोटे-से हिस्से से पूरे देश में अनाज के सुरक्षित भण्डारण का इन्तज़ाम किया जा सकता है।

● संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य व कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार हर तीन में से एक, भारतीय को अक्सर भूखे पेट सोना पड़ता है। इसका कारण खाद्यान्न की कमी नहीं बल्कि खाने-पीने की चीज़ों की बढ़ती महँगाई ओर लोगों की घटती वास्तविक आय है।

● संयुक्त राष्ट्र संघ की एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 1991 में (यानी नयी आर्थिक नीतियों की शुरुआत के समय) प्रति व्यक्ति औसत 580 ग्राम खाद्यान्न उपलब्ध था,ा जो 2007 तक घटकर 445 ग्राम रह गया। ध्यान देने की बात है कि इस दौरान समाज के समृद्ध तबके का खान-पान पर ख़र्च और बरबादी काफ़ी बढी है। यानी खाद्यान्न की औसत उपलब्धता में आयी कमी का का भारी हिस्सा ग़रीब के भोजन से कम हुआ है। इसी रिपोर्ट के अनुसार, उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के दौर में ग़रीबों की प्रति व्यक्ति कैलोरी की खपत में भी काफ़ी कमी आयी है

● भारत में प्रोटीन के मुख्य स्रोत के रूप में औसतन एक आदमी को प्रतिदिन 50 ग्राम दाल मिलनी चाहिए। लेकिन भारत की नीचे की 30 प्रतिशत आबादी को औसतन 13 ग्राम ही दाल मिल पाती है। पिछले कुछ वर्षों में दालों की क़ीमत में दोगुने से भी अधिक की बढ़ोत्तरी ने इसे और भी कम कर दिया है। आज से 55 वर्ष पहले 5 व्यक्तियों का परिवार एक साल में औसतन जितना अनाज खाता था, आज उससे 200 किलो कम खाता है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006